जितना ही हमारा बल बढ़ेगा उतना ही हमारा कठिन से कठिन काम भी आसान होता जायगा। बलवान् के साथ लड़ने से बल बढ़ता है। जिसके सामने कठिनाइयाँ नहीं हैं उसे बल की आवश्यकता ही क्या है? और जिसे आवश्यकता नहीं उसे बल क्यों होगा? कठिनाइयों का युद्धनिमन्त्रण स्वीकार करो और उन्हें परास्त करो। इससे आत्मा को शान्ति और हृदय को सुख मिलेगा।

* * * *

कठिन परिस्थितियों की निन्दा मत करो। खूब विचार करने से मालूम होगा कि उसकी तुम्हारे लिये आवश्यकता थी। यदि वह न होती तो तुम्हारी इतनी उन्नति न हो सकती जो हुई है। बहुत से लोग यदि दरिद्र न होते तो विद्या लाभ भी नहीं करते। ईश्वरने व्यर्थ दूषित और अनावश्यक पदार्थों वा परिस्थितियों को नहीं बनाया है। अतः अपनी कठिन से कठिन परिस्थिति का स्वागत करो। उसके गूढ़ रहस्यों और उसकी आवश्यकता पर विचार करके इस ईश्वर के दिए हुए अवसर से लाभ उठाओ। यह तुम्हारे लिए जहर नहीं अमृत है। इस रहस्य को यदि समझ लोगे तो तुम्हारा हृदय सर्वदा शान्त, सुखी और आनन्द से परिपूर्ण रहेगा।

* * * *

कड़ी परिस्थितियों और जीवनसंग्राम को देखकर कभी मत डरो। संग्राम में ही जीवन और आनन्द है। वेकार मनुष्य जीता ही मुर्दा है। सच्ची वातों और सच्चे ज्ञान को जानो। तुम्हारा यह संसार ही तुम्हारे लिए स्वर्गरूप होगा।

* * * *

बड़े बड़े महात्माओं और कर्मवीरोंने जो कुछ किया है, वह बाहरी ज्ञान से नहीं, भीतरी ज्ञान से। शरीर बल से नहीं, आत्मबल से।

उसी आत्मबल से जहाँ पर कि सारी शक्तियों का—सारे बलका- सारे ज्ञानका, और सारे सुख और सारे आनन्द का केन्द्र है।

*　*　*　*

बड़े बड़े विज्ञानवेत्ताओंने बड़े बड़े फिलासफरोंने जोकुछ आविष्कार किया है—जो कुछ लिखा है—उसे वृत्त वा परिधि में स्थित होकर नहीं—उससे बाहर स्थित होकर नहीं किन्तु, जो कुछ उन्होंने पाया है केन्द्र में स्थित होकर, अन्तर्मुख होकर, और भीतर को सिमिटकर अर्थात् अपने में आकर।

*　*　*　*

ईश्वर से अपनी परिस्थितियों और कामों को सरल करने के लिए मत कहो। इसकी इच्छा मत करो कि तुमारे कर्त्तव्य कर्म सरल हो जायँ। इससे अच्छा तो यह है कि तुम शक्तिमान् होनेकी इच्छा करो। भावना करो कि हम ऐसे शक्तिमान हो जायँ कि कठिन से कठिन काम भी कर सकें। आसान काम पाने की भावना मत करो। बल की इच्छा करो, सरल काम मिलने की इच्छा करना व्यर्थ है। कठिन से कठिन परिस्थितियों का भी सामना करने के लिए तैयार रहो इससे तुम्हारा शरीर बलवान होगा, आत्मबल बढ़ेगा और हृदय को शांति मिलेगी।

*　*　*　*

तुम क्या नहीं कर सकते पर तुम्हारे भीतर विश्वास नहीं है। अविश्वास के कारण तुम डरते हो। अपने सच्चे स्वरूप को जान कर निर्भय हो जाओ। सारी आफत सारी विपत्ति, सारी कठिनाई और सारा दुःख उसी दिनसे छूट जाता है जिस दिन से यह मनुष्य निर्भय हो जाता है-जिस दिनसे यह मनुष्य भय को अपने हृदयसे निकाल देताहै। भयको निकालदो तो असम्भव भी सम्भव हो जाय

सर्वदा प्रसन्न रहो।

जो जैसा होता है उसी को अपनी ओर खींचता है। जलराशि समुद्र भूमंडल की सब नदियों को अपनी ओर खींच लेता है। लड़कों के पास लड़के, वृद्धों के पास वृद्ध और लुटेरों के पास लुटेरे इकट्ठे हो जाते हैं। अतः सर्वदा प्रसन्न रहो, हँसते रहो और आनन्दमय रहो। इसका फल यह होगा कि चारों ओर से संसार का सारा आनन्द और सुख तुम्हारी ओर झुक पड़ेगा, खिंचा और बहता हुआ चला आवेगा।

❁ ❁ ❁ ❁

जैसा को तैसा खींचता है। समान के पास समान जाता है। गँजेड़ी के पास गँजेड़ी, भँगेड़ी के पास भँगेड़ी, और शराबी के पास गाँवभर के शराबी एकत्र हो जाते हैं। मनुष्य के चरित्र का पता उसकी मित्रमंडली से बहुत कुछ लग सकता है। अतएव यदि हमें सच्चिदानन्द को अपने पास और अपने हृदय में बुलाना है तो हमें स्वयम् सच्चिदानन्द बन जाना चाहिये।

❁ ❁ ❁ ❁

समान को अपने समानवाली वस्तुओं को खींचने की अद्भुत शक्ति होती है। पक्षियों के पास पक्षी, भेड़ियों के पास भेड़िए और हिरनों के पास हिरन आप से आप जुट जाते हैं। अतः यदि ईश्वर को अपने हृदय में बुलाना है तो पहले हृदय में उन्हीं शुभ गुणों को धारण करो जो ईश्वर में वर्त्तमान हैं। ईश्वर को खींचने के लिए तुम्हें स्वयम् ईश्वर बन जाना चाहिये।

* * * *

जिसे तुम दुःख कहकर घबड़ाते हो वह दुःख नहीं सुख का पूर्वरूप है। आनन्ददायिनी वृष्टि के पहले आसमान में काले काले भयंकर बादल प्रकट होते हैं। दूर से देखकर लोग डरते हैं पर यही बादल जब आनन्ददायिनी वृष्टि करने लगते हैं तो लोग प्रसन्न होते हैं। संसार में जिसे दुःख कहते हैं वह वास्तव में उत्पन्न नहीं हुआ। वह तो अपने ही विचारों का भ्रम है। निर्विकार ईश्वर विकार को कैसे उत्पन्न करेगा? यदि निरामय और निर्विकार सर्व व्यापक है तो रोग और विकार कहाँ रह सकते हैं? आनन्दमय सच्चिदानन्द यदि सब जगह अणु अणु में वर्तमान है तो दुःख और कष्ट कहाँ है? सारे संसार में ईश्वर व्यापक है इसका मतलब यह है कि सारे संसार में आनन्द ही आनन्द है, क्योंकि ईश्वर और आनन्द में भेद ही क्या है। ईश्वर आनन्दमय है। योगी इस वास्तविक ज्ञान को जानकर सर्वदा शान्ति और आनन्द में निमग्न रहता है। जिसको यह वास्तविक ज्ञान हो गया वह जीवनमुक्त है उसके हृदय में सर्वदा शान्ति रहती है।

* * * *

केवल अच्छी परिस्थितियों के कारण कोई सुखी नहीं हो सकता। केवल राजा के घर जन्म लेकर कोई आनन्द और शान्ति का भागी नहीं होता। तमाम राजा और राजकुमार अपने को दुःखी कहते हुए सुने गए हैं। कितने ऐसे भी हुए हैं कि जिन्होंने अपने जीवन से निराश होकर आत्महत्या भी कर ली है। केवल धनी, बलवान् और सुन्दर होने से भी कोई सुखी नहीं हो सकता। सुखी होता है मनुष्य अपनी आत्मा के सच्चे ज्ञान से जैसा कि हमारी बनाई हुई पुस्तकों में कहा गया है।

* * * *

तुम सुख वा शान्ति के लिए, वृत्ति वा परिधिकी ओर दौड़ते हो—तुम केन्द्रको छोड़कर संसार में भटकते हो—पर क्या वहाँ शान्ति मिल सकती है? कदापि नहीं। यदि तुम शान्ति और आनन्द के भूखे हो तो वृत्त परिधि वा संसार को छोड़कर, केन्द्र में—भीतर—अपने आपमें— मन से सिमिटकर स्थित हो जाओ। यहीं शान्ति, आनन्द और सुख का भण्डार है, यहीं सच्चिदानन्द का निवास है।

* * * *

संसार में सबसे बड़ी भूल वह लोग करते हैं जो सच्चिदानन्द आनन्द कन्द ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हुए भी सारे संसार में दुःख और पाप का सम्राज्य मानते हैं। क्या एक ही बिन्दु के एक ही भाग में तथा एक ही समय में प्रकाश और अन्धकार दोनों रह सकते हैं? क्या आधसेर के गिलास में एकही समय के भीतर आधसेर दूध और आधसेर शराब दोनों रह सकते हैं? क्या ईश्वर ही के भीतर राक्षस भी रह सकता है? नहीं, कदापि नहीं। यदि ईश्वर या आत्मा सारे संसार में वर्त्तमान है तो इसका अर्थ यह है कि सारे संसार में आनन्द ही आनन्द है। जो यह मानता है कि सारे संसार में दुःख ही दुःख है वह सुखी नहीं हो सकता। योग की दृष्टि और ब्रह्मज्ञान के विचार से देखो तो तुम्हें चारों ओर आनन्द ही आनन्द प्रत्यक्ष होगा। यदि आनन्द और शान्ति का अनुभव करना है तो ऐसे ही विचारों का आश्रय लेना पड़ेगा।

* * * *

यदि सारे संसार में ईश्वर या आत्मा व्यापक है तो इसका अर्थ यह है कि सारा संसार पुण्य रूप है और आज से यह कहना छोड़ देना चाहिये कि संसार पापमय है। जो अपने निष्पाप

आत्मा को पापी मानता है, जो संसार को पापमय और दुःख मूल कहता है, उसके हृदय में कभी आनन्द और शान्ति नहीं आ सकती।

* * * *

संसार में चारों तरफ आनन्द ही आनन्द है और संसार की सारी प्रकृति और नियम हमारी सहायता करने और आज्ञा मानने के लिये तैयार रहते हैं। संसार हमारा मित्र है शत्रु नहीं। संसार के सब प्रबन्ध और सारे नियम हमारी भलाई के लिए बने हैं। यह सब हमारे लिए हैं हम उनके लिये नहीं। प्रकृति हमारी दासी और उसके नियम हमारे सेवक हैं। इस सच्चे ज्ञान को धारण करते ही हृदय शान्ति और आनन्द से भर जायगा।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि ईश्वर अखण्ड, अनन्त, पूर्ण और सर्वव्यापक है तो दुःख विपत्ति, कष्ट, रोग, दोष और पाप कहाँ है ? जहाँ ईश्वरत्व है वहीं यह सब कैसे रह सकते हैं ? ईश्वर कहाँ नहीं है ? अतः भीतर बाहर चारों ओर आनन्द ही आनन्द भरा है । हम स्वयम् आनन्दकन्द और सच्चिदानन्द हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

रोग, दोष, पाप और दुःख का अस्तित्व केवल कल्पना के भीतर है। वास्तव में इनका अस्तित्व ईश्वरीय सृष्टि के अन्दर नहीं है। निष्पाप, निष्कलंक, निरामय और निर्विकार ईश्वर पाप, दोष, रोग और दुःख को नहीं बना सकता। ये काल्पनिक और असत्य हैं इन्हें अपने मन से निकालदो। देखो ! तुम्हारे चारों ओर ईश्वर ही ईश्वर और आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है।

❀ ❀ ❀ ❀

तुम पाप, दोष, रोग, दुःख और शैतान के राज में नहीं हो, तुम ईश्वर के राज में हो जिसके राज में पाप, दोष, रोग और दुःख नहीं रह सकता। तुम्हारे ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, बाहर, भीतर ईश्वर ही ईश्वर भरा हुआ है। तुम स्वयम् ईश्वर हो, तुम स्वयम् आनन्द स्वरूप हो।

ॐ ॐ ॐ ॐ

आत्मबल।

ईश्वर तुम स्वयम् हो। सर्व शक्तिमान् ईश्वर बाहर नहीं तुमारे भीतर ही वर्तमान है। बलवान् और विजयी होना तुमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। इसके लिये ईश्वर वा प्रकृति से प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं। जिसकी आवश्यकता है उसके लिये दृढ़ता और विश्वास के साथ प्रकृति को आज्ञा दो। प्रकृति उसे पूरा करेगी। यह याद रक्खो कि तुमारे भीतर जो जीव है वह सारे संसार का नियन्ता और शासक है। तुम्हें यदि सच्चे आनन्द और सच्ची शान्ति की आवश्यकता है तो इसे पहचान लो।

ॐ ॐ ॐ ॐ

भावना और इच्छा में बड़ा बल है। इच्छा ईश्वरीय वस्तु है। जो चाहते हो उसे उपस्थित करने के लिए प्रकृति को आज्ञा दो और इस विश्वास और आत्मबल के साथ आज्ञा दो कि वह इसे अवश्य पूरा करेगी। नियमानुसार प्रकृति तुमारी आज्ञा मानने के लिये विवश है जैसे सूर्य का पूर्व की ओर उदय होना निश्चित है उसी तरह से यह भी निश्चित है। आत्मा स्वामी है और प्रकृति उसकी दासी है। जो मनुष्य अपने अज्ञान के कारण इसके विरुद्ध सोचता और भावना करता है उसके हृदय में कभी शान्ति नहीं आती।

तुमारे भीतर उस सर्वशक्तिमान् आत्मा का निवास है जिसकी यह प्रकृति दासी है । प्रकृति में यह शक्ति नहीं है कि वह तुमारी इच्छाओं के विरुद्ध चले । इस विषय को जिसने तत्व से समझ लिया है उसका हृदय सर्वदा शान्ति और आनन्द से पूर्ण रहता है ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

मनुष्य की आत्मा के भीतर अनन्तशक्ति है, अनन्त और अखण्ड आनन्द है, अनन्त सुख और सच्ची शाँन्ति है, अनन्त और सच्चा ज्ञान है । सब कुछ है, पर बहुत से लोग आत्मज्ञान न होने के कारण इससे अनभिज्ञ रहते हैं और सर्वशक्तिमान् को अपने से अलग मानते हैं । जब तक हम सर्वशक्तिमान् ईश्वर को अपने से अलग मानकर उससे डरा करेंगे तबतक हृदय को सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

घुटने टेककर प्रार्थना करने वाले यह नहीं जानते कि वह अपनी आत्मा को इस तरह से गुलाम बनाकर कितना नीचे गिरा रहे हैं । आत्मज्ञानसे विमुख मनुष्य यह नहीं जानता कि वह सर्व शक्तिमान् बाहर नहीं भीतर है । वह भक्त यह भी नहीं जानता कि हम सेवक नहीं स्वामी हैं ; हम गुलाम नहीं स्वतन्त्र हैं, हम बद्ध नहीं मुक्त हैं मुक्ति और बन्धन अपने मन के भीतर है जो अपने को किसी का गुलाम मानता है वह मुक्त कैसे है? जो सेवक है उसमें शान्ति कहाँ? जो बद्ध है वह स्वतन्त्र कैसे है? जो ज्ञान भक्ति या धर्म हमारे सच्चिदानन्द को या हमारी स्वतन्त्र आत्माको गुलाम, सेवक या नीच बनाना चाहता है उसे दूरसे ही छोड़ दो । अपनी आत्मा को पहचानो । अपनी महानता और अपने गौरव का ज्ञान स्वयम् प्राप्त करो । जब तक अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं है तबतक सच्चा

आनन्द और सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। आत्मज्ञानी जीवन मुक्त है, वह संसार में रहता हुआ भी स्वर्ग में है। आत्मज्ञानी के लिए संसार दुःख का समुद्र नहीं आनन्द का महासागर है।

❀ ❀ ❀ ❀

अपने को निर्बल मानना सचमुच निर्बल हो जाना है। अपने को सेवक और बद्ध मानना सचमुच अपने हाथों से अपनी स्वतंत्रता छीनकर हथकड़ी और बेड़ी धारण कर लेना है। ईश्वर के सामने भी नित्य गिड़गिड़ाना, हाथ जोड़ना और नाक रगड़ना मनुष्य को नीच बना देता है। सचमुच यदि ईश्वर का व्यक्तित्व हमारी आत्मा से अलग होता तो वह इतनी प्रार्थनाओं और माँगों से ऊब गया होता। अनन्तकाल बीत गये पर माँगनेवाले अबतक दरिद्र ही रहे। अब भी वही माँगें और वही प्रार्थनायें वर्त्तमान हैं। बिना आत्मज्ञान के हृदय में पूर्णता नहीं आ सकती। जबतक हृदय के भीतर पूर्णता नहीं है, तबतक वहाँ आनन्द और शान्ति नहीं रह सकती।

❀ ❀ ❀ ❀

जो माँगो वह अपनी आत्मा से माँगो। दूसरे से माँगना भिक्षा है जो अति तुच्छ है। जो माँगो उसे अपना समझकर माँगो। माँगना छोड़कर आत्मा से ले लेने की आदत डालो। सुख, शान्ति और आनन्द पर तुमारा सम्राज्य है-तुमारा स्वत्व है-तुमारा अधिकार है-वह तुमारी वस्तु है। दूसरे की वस्तु गिड़गिड़ाकर माँगना या चुरा कर ले लेना दोनों पाप हैं। तुम्हें किसी से माँगने और प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा खज़ाना तुमारे भीतर छिपा हुआ और बन्द पड़ा है। आत्मज्ञान की कुंजी लेकर उसे खोलो और जो चाहो ले लो। आश्चर्य है कि सम्राट् दूसरों

के सामने हाथ जोड़े ! आश्चर्य है कि धन कुबेर भी सब के सामने हाथ पसारता और भीख माँगता फिरे ! आश्चर्य है कि सर्वशक्तिमान् भी दूसरों की सहायता चाहे। आश्चर्य है कि सारे संसार का स्वामी अपने को गुलाम, दास और सेवक कहे ! आश्चर्य है कि बलवान् सिंह अपने को बकरी और गीदड़ समझे ! अतः सच्ची शान्ति और सच्चे आनन्द के लिये सबसे पहले अपने सच्चे स्वरूप का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। किसी की दया के भरोसे या माँगने से अनन्तज्ञान, अनन्तधन, अनन्तबल, और अनन्त आनन्द नहीं मिल सकता।

ॐ ॐ ॐ ॐ
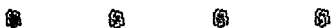
आत्मा के भीतर अनन्त धन, अनन्त रूप और अनन्त बल है। पर इस खजाने पर तुम्हारे अज्ञान और अविश्वास ने ताला चढ़ा रक्खा है। आत्मा की लक्ष्मी और इसी विश्वास की कुंजी से अविश्वास के ताले को हटाकर इस आत्मा में से जो चाहे ले लो। यह चोरी या डाका नहीं है यह अपना ही खजाना है। भ्रमवश या अज्ञान से अबतक तुमने इधर भीतर की ओर दृष्टि नहीं डाली है। चीज तुम्हारी है, खजाना तुम्हारा है, यह आत्मदेव स्वयम् तुम्हारे हैं। पुराने विश्वासों की ओर पीठ करके अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप की ओर मुड़ जाओ। अज्ञान और भ्रम की आग से झुलसे मनुष्य जबतक अपनी आत्मा की शीतलता के पास नहीं पहुँचेगे तबतक शान्ति नहीं मिल सकती। हमारा सच्चा स्वरूप और हमारी सच्ची आत्मा शान्ति और आनन्द का समुद्र है। भ्रम और अज्ञान के जंगल में भटकना छोड़कर इस समुद्र में स्नान करो।

ॐ ॐ ॐ ॐ

सच्ची भक्ति और सच्चा प्रेम मनुष्य का अपनी आत्मा से होता है। अतः ईश्वर के सच्चे भक्त ईश्वर को अपनी आत्मा से अलग नहीं मानते। इसी प्रेम को अनन्य प्रेम कहते हैं और ईश्वर का सच्चा भक्त अन्त में जो जानता है यही है कि हम स्वयम् ईश्वर हैं। जब यह सच्चा ज्ञान मनुष्य को तत्व से हो जाता है तो सारा अन्तः करण शीतल हो जाता और हृदय आनन्द तथा शान्ति से पूर्ण हो जाता है।

卐 卐 卐 卐

यदि सारे संसार में वही सब से बड़ा पदार्थ व्यापक है तो तुम जीवात्मा कैसे हो? यदि सारे संसार में वही निर्विकार पुण्यात्मा वर्तमान है तो तुम दुर्गुणों से पूर्ण पापात्मा कैसे हो? अपने को पापात्मा जीवात्मा और नीच समझना छोड़ दो। जो अपनी आत्मा को पापी और नीच समझता है वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।

卐 卐 卐 卐

अज्ञान से संसार दुःख मूल है। अज्ञान से संसार पापमय है। अज्ञान से मनुष्य ईश्वर नहीं एक अत्यन्त क्षुद्र जीव है। तमाम बुराई अज्ञान में है। वास्तव में कहीं बुराई नहीं है, किन्तु संसार की सारी जगह उसी आत्मा से पूर्ण है जो निर्विकार पवित्र और महान् है। यदि हृदय को आनन्द और शान्ति से भरना है तो इस ज्ञान पर विचार करो, सारा भ्रम और सारा अज्ञान दूर हो जायगा।

卐 卐 卐 卐

लोग कहते हैं ज्ञान व्यवहार के लिए नहीं है। यदि ऐसी बात है तो ज्ञान व्यर्थ है। "अहं ब्रह्मास्मि" कहने से क्या लाभ, यदि हृदय से गुलामी के भाव नहीं निकले और वह व्यवहार में प्रत्यक्ष

नहीं हुआ। सोना को सोना जानकर भी व्यवहार में तुम उससे मिट्टी का काम लेते हो तो सब व्यर्थ है। अपने को ईश्वर मानते हुए भी यदि तुम अपने को रोगी, निर्बल, वृद्ध, गुलाम परतन्त्र और नीच समझते हो अर्थात् व्यवहार में इसी का उपयोग करते और ब्रह्मज्ञान को नहीं छूते हो तो सबज्ञान व्यर्थ है। ज्ञान और योग को व्यवहारोपयोगी बनाओ। यही आनन्द को प्राप्त करने का गुप्त रहस्य और शान्ति की कुंजी है।

❀ ❀ ❀ ❀
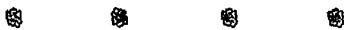
सब जानकर यदि हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहोगे तो कोई लाभ नहीं है। ज्ञान और योग मनुष्य को उन्नतिके शिखरपर पहुँचा सकता है पर जब उसे व्यवहार में लाओगे तब। ज्ञान और योग वह तलवार है जिससे तुम अपनी सारी विघ्न बाधाओं को काटकर आगे बढ़ सकते हो। पर अच्छी से अच्छी तलवार यदि म्यान में रखकर खूँटी पर टाँगदी जाय तो कोई लाभ नहीं है। इसलिए मनोबल, इच्छा शक्ति+ विश्वास, ज्ञान और योगको व्यवहार में लावो। आलस्य छोड़ कर उठो और कुछकरो। कर्म और परिश्रम में ही शान्ति और आनन्द है।

❀ ❀ ❀ ❀

+ इच्छा शक्ति पुस्तक १) पर मँगाकर पढ़ने और उसके अनुसार साधन करने से will power की शक्ति खूब बढ़ती है।

अपनी बुद्धि और अनुभ से काम लो।

साढ़े निन्नानवे प्रतिशत मनुष्यों के विचार, विश्वास और भावनायें पुस्तकों, किस्सों, कथाओं व्याख्यानों और नाटकों के अनुसार हुआ करती हैं। पुस्तक, किस्से और व्याख्यानादि वही लोगों को अच्छे लगते हैं जो अधिकतर असत्य, अतिरञ्जित और असम्भव घटनाओं से पूर्ण होते हैं। जैसे, एक ने चाँद के दो टुकड़े कर चूर चूर कर दिया, एक फकीर ने एक छोटी सी मछली में दो हजार मनुष्यों को भोजन करा दिया और सब के पेट भर गये। लैला मजनू कैसे प्रेमी थे, शीरीं फरहाद कैसे थे और हातिम कैसा बहादुर था यह सुनने में अच्छा मालूम होता है पर मनुष्य इनसे सच्चे और वास्तविक ज्ञान से दूर जा पड़ता है। मनुष्य अपनी आँख की देखी हुई बातों पर कम ध्यान देता है। अपनी बीती और अपने अनुभवों का मूल्य नहीं समझता। पर, सच्ची बात यह है कि सच्चा और वास्तविक ज्ञान, अपनी बुद्धि, अपना निष्पक्ष अनुभव और अपनी देखी हुई घटना ही, बतला सकती है। किताब की ऐसी बातों और दूसरे के किस्सों की ओर ध्यान न देकर अपनी देखी हुई घटनाओं पर निष्पक्ष भाव से विचार करो इससे वास्तविक और सच्चा ज्ञान होगा। बिना सच्चा ज्ञान हुए हृदय को शान्ति नहीं मिल सकती। सच्चा ज्ञान सच्ची शान्ति और सच्चे सुख का स्रोत है।

❀ ❀ ❀ ❀

भूतों के झूठे किस्से, झूठी कथायें और किसी पुरुष विशेष की

झूठी प्रशंसा बहुत बढ़ा चढ़ाकर करने का इन मनुष्यों ने अपना स्वभाव बना लिया है। इससे सत्य की हत्या होती, ज्ञान का खून होता और सच्चा अनुभव प्रकाश में नहीं आने पाता है। अतः ज्ञान प्राप्त करने का सबसे अच्छा साधन अपनी बुद्धि अपनी आँख, अपना निष्पक्ष अनुभव और अपनी आत्मा है। सच्चे ज्ञान और सच्चे आनन्द का समुद्र यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा है।

❀ ❀ ❀ ❀

अपनी बुद्धि से काम न लेकर, अपनी आँखों का विश्वास न कर, और अपनी आत्मा को तुच्छ मानकर मनुष्य जाति ने आजतक बहुत धोखा खाया है। अपनी जीती जागती आत्मा को तुच्छ मानकर मनुष्य जाति मुर्दों के पीछे दौड़ती और उनसे सहायता पाने की आशा रखती है। दूसरों की आशा छोड़कर अपनी आत्मा पर विश्वास रक्खो। सफलता, सुख, शान्ति और आनन्द उसी के साथ रहते हैं जिसके साथ स्वावलम्बन, आत्म-गौरव और आत्म विश्वास है।

❀ ❀ ❀ ❀

जीवन और मरण का रहस्य

बालकों और युवा पुरुषों को हँसते, खेलते और आनन्द से कूदते देखकर कुछ साधु, सन्त और महात्मा कहा करते हैं कि "इस अज्ञानी, जाहिल और ना समझ को यह नहीं मालूम कि इसे एक दिन मरना है, काल सिरपर नाच रहा है, जिसका कुछ

ठिकाना नहीं कि कब आ जाय।" सच्ची बात यह है कि ऐसे साधु सन्त स्वयम् अज्ञानी हैं। जो अमर अविनाशी, अनादि और अनन्त है वह काल और मृत्यु की परवा नहीं कर सकता। हम लोग स्वरूप से ही आनन्दमय हैं। अतः उस आनन्दमय सच्चिदानन्द और आनन्द कंद का सुखसे घूमना और आनन्द के साथ उछलना तथा चिन्ता रहित होकर प्रसन्नता के साथ हँसते हुए चहकना स्वाभाविक है। अतः हमें शान्ति के साथ बैठने दो, सुखसे सोने दो, निश्चिन्त होकर घूमने दो और आनन्द के साथ कूदने, उछलने, चहकने और हँसने दो।

* * * *

संसार के किसी अणु का कभी नाश नहीं होगा। अविनाशी से उत्पन्न हुए सभी अविनाशी हैं। सूर्य्य के अस्त हो जाने पर सूर्य्य का नाश नहीं होता। स्थूल वृक्ष कुछ दिनों में सूक्ष्म बीज रूप में आ जाता है यह बीज फिर वृक्ष हो जाता है। सूक्ष्म शरीर से स्थूल की उत्पत्ति हुई है। स्थूल फिर सूक्ष्म रूप से अदृश्य हो जायगा। मृत्यु न आत्मा की होती है न शरीर की। आत्मा बिना शरीर नहीं रह सकती। आज तक किसीने शरीर रहित किसी आत्मा का अनुभव नहीं किया है। आत्मा सर्वदा शरीर में रहती है चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल। आत्मा अविनाशी है तो शरीर भी अभिनाशी है। इस जीवन और मृत्यु के तत्व को समझो। सारी चिन्ता, सारी विपत्ति, सारा शोक और मोह मिट जायेगा और तुम्हारा हृदय शान्त, प्रसन्न तथा आनन्द मय हो जायगा।

* * * *

जैसे दूध के भीतर से घी निकाल लेते हैं—जैसे मूँज से सींक निकालकर अलग कर लेते हैं—ठीक इसी तरह से स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता है। जीवन के समय स्थूल शरीर और मृत्यु के बाद सूक्ष्म में आत्मा निवास करती है। आत्मा कभी बिना शरीर के नहीं रहती। विदेह मुक्त आत्मा भी कारण शरीर में रहती है। कारण शरीर का दूसरा नाम संकल्प शरीर है। आत्मा और आत्मा का संकल्प सर्वदा साथ रहेगा। संकल्प रूपवान् पदार्थ है। संकल्प कैसे रूपवान् है इसे जानने के लिए हमारी बनाई पुस्तक नीरोग सुखी और जीवन मुक्त होने का अद्भुत उपाय' देखिए। चाहे कारण शरीर हो वा सूक्ष्म शरीर हो—चाहे सूक्ष्म शरीर हो वा स्थूल शरीर हो—कोई न कोई शरीर आत्मा के साथ हर समय रहता है। बिना शरीर के आत्मा आज तक न कहीं देखी गयी, न सुनी गयी और न अनुभव में आयी अतः आत्मा ही अमर नहीं शरीर भी अमर है। तुम अमर और अविनाशी हो। तुम्हें, मृत्यु, रोग, दोष विपत्ति और पाप छू तक नहीं सकता इस वास्तविक तत्व पर खूब विचार करो, यदि इसे तत्व से समझ लोगे तो हृदय के भीतर एक अपूर्व शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा।

* * * *

जैसे स्वप्न से मनुष्य जाग उठता है या जागता हुआ मनुष्य सो जाता है ठीक यही रहस्य जीवन और मृत्यु के भीतर छिपा हुआ है। स्वप्न से जागने पर स्वप्न की बात याद रहती है पर स्वप्न में जागने की बात या दूसरे स्वप्न की बात नहीं याद रहती ठीक इसी तरह से इस जीवन में दूसरे जन्मों की बात याद नहीं है। यदि असंख्य जन्मों की बात याद रहती तो यह जीवन इतना सुखमय न होता। स्वप्न में यदि जाग्रदवस्था की बातें याद रहतीं

तो मनुष्य कभी सुख की नींद न ले सकता। अनेक जन्मों की बातें याद न रहने का यही रहस्य है। तुम स्वयम् सब के कारण हो। जीवन और मृत्यु के पूर्वोक्त सिद्धान्त को तत्त्व से समझो। बिना इसे समझे हृदय में सच्ची शान्ति नहीं आ सकती।

* * * *

स्वप्न का शरीर सूक्ष्म होता है और जाग्रदवस्था का स्थूल। स्वप्न के शरीर को हम नित्य प्रत्यक्ष देखते हैं। स्वप्न का पैर जब दौड़ता है तब यह स्थूल पैर हिलाता भी नहीं। स्वप्न का हाथ स्वप्न में ग्रहण करता है और यह स्थूल हाथ पड़ा रहता है। स्वप्न में स्वप्न की आँख देखती है और यह स्थूल आँख बन्द रहती है इन बातों का अनुभव यह सिद्ध कर रहा है कि स्वप्न का सूक्ष्म शरीर अलग है, वह एक दूसरा ही शरीर है। पर है हमारा ही, ऐसा ही होता भी है। जैसे यह जाग्रदवस्था में सत्य मालूम होता है ठीक उसी तरह से वह स्वप्नावस्थामें सत्य मालूम होता है। अपनी अपनी अवस्थाके लिए दोनों सत्य और उपयोगी हैं। स्थूल के बाद सूक्ष्म शरीर मिलता है और सूक्ष्म के बाद स्थूल। शरीर और आत्मा दोनों अमर हैं। जाग्रद-वस्था में जब काम करते करते मनुष्य थक जाता है तो सो जाता है और जब सोते सोते थक जाता है तो जाग उठता है। जीवन मरण का यही रहस्य है। इसे तत्त्व से समझो—इस पर खूब विचार करलो—जो बातें यहाँ लिखी गयी हैं वह बहुत ही सूक्ष्म रूप में हैं। तुम्हारा शरीर भी पवित्र और अमर है बिना तुम्हारी इच्छा के इसे मृत्यु छू भी नहीं सकती। तुम्हारी इच्छा और आत्मा साधारण वस्तु नहीं है। इस सिद्धान्त को विस्तार से जानने के लिए हमारी बनाई हुई पुस्तक "शरीर से अमर होने का उपाय"

देखो। उसमें यह बातें विस्तार के साथ हैं। यह वह सिद्धान्त है-यह वह तत्व है—जिसे जानकर मनुष्य, सुखही नहीं, ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है।

* * * *

एक ही मनुष्य बच्चा, बालक, युवा और वृद्ध होता है। इसका प्रमाण, यह हमारा सूक्ष्म संस्कार है कि हम पहले बच्चे थे। पर बचपन की बातें हमें स्मरण नहीं हैं पशुओं के बच्चे जन्म लेते ही जैसी २ चेष्टायें करते हैं उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उनका यह संस्कार बहुत पुराना है नहीं तो जन्म लेते ही वह बातें न आतीं। अवस्था और दशा बदलती रहती है पर मनुष्य कभी नहीं मरता। एक आत्मा दूसरे के साथ मिलती भी नहीं। सब का अलग अलग अस्तित्व है। किसी की मृत्यु नहीं होगी। जाग्रद-वस्था और स्वप्नावस्था की तरह जीवन और मरण भी एक अवस्था है। इस ज्ञान को समझो। यह ज्ञान शान्ति सुख और सच्चे तथा स्थायी आनन्द की कुञ्जी है।

* * * *

प्रकाश एक सूक्ष्म वस्तु है यह जब किसी आधार पर पड़ता है तभी इसे देख सकते हैं घर के भीतर खिड़कियों में से प्रकाश की रेखा निराधार भी चमकती हुई दृष्टि गोचर होती है। पर यह भी निराधार नहीं है। कमरे के अन्दर जो रेणु उड़रहे हैं उन्हीं पर पड़ने के कारण वह चमकती है। प्रकाश बिना आधार के नहीं होता इसी तरह से आत्मा भी कभी बिना शरीर के नहीं रहती। जीवन के समय जैसे स्थूल शरीर होता है ठीक उसी तरह से मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर रहता है सूक्ष्म शरीर वैसा ही होता है जैसा उसके पहले स्थूल शरीर था और फिर जन्म लेने पर स्थूल

शरीर वैसा ही होता है जैसा सूक्ष्म शरीर रहा। इसमें कुछ कुछ परिवर्त्तन भी हो जाता है। जाग्रदवस्था का जैसा शरीर होता है वैसा ही स्वप्न का शरीर बनता है और स्वप्न के अनुसार जाग्रदवस्था का। पर कभी कभी या क्रमशःपरिवर्त्तन भी होता है। यदि इस चक्र में इच्छाशक्ति और अपने संकल्प का प्रयोग न किया जाय तो यह नियमानुसार होता रहता है। पर इच्छाशक्ति, आत्मबल और योग बल से इस चक्र को रोक सकते हैं। हम इस शरीर को जब तक चाहें तब तक रख सकते हैं। पर इस ज्ञान को हम यहाँ विस्तार से नहीं लिख सकते।

* * * *

बिना सत्य ज्ञान के मनुष्य जीवनमुक्त नहीं हो सकता। और जब तक तुम जीवनमुक्त नहीं होते तब तक सच्चे आनन्द, सच्चे सुख और सच्ची शान्ति का अनुभव नहीं कर सकते।

* * * *

सूचना।

आत्मबल, योगबल और इच्छाशक्ति इन तीनों को जानने के लिए हमारी बनाई हुई तीन पुस्तकें देखिए—पहली पुस्तक का नाम है "योग साधन" दूसरी का नाम है "वेदान्त सिद्धान्त" और तीसरी का नाम है "शरीर से अमर होने का उपाय।"

* * * *

ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन।

पहले कह आये हैं कि हमने ईश्वर का दर्शन किया है। पर आँखों से नहीं, ज्ञान से। बाहर नहीं भीतर। अलग नहीं, किन्तु अपने में। वह अलग नहीं है, वह हमारी आत्मा है।

* * * *

जो भीतर है वही बाहर है। भीतर असल है, बाहर उसी की नकल है। भीतर बिम्ब है, बाहर प्रतिबिम्ब है। बाहर की तमाम चीजें भीतर की कल्पनायें हैं। भीतर का बिम्ब और बाहर का प्रतिबिम्ब सब उससे अभिन्न हैं। फिर भी उसका दर्शन पहले पहल भीतर ही होता है।

अ के शरीर को देखकर लोग अ का दर्शन मान लेते हैं। क्यों? इसलिए कि अ अपने शरीर के अणु २ में व्यापक है। जो जिसमें व्यापक होता है वही उसका शरीर कहलाता है। ईश्वर सारे संसार में व्यापक है,अतः सारा स्थूल जगत् उसका शरीर है। अतः हम संसार को नहीं देख रहे हैं, हम ईश्वर का शरीर देख रहे हैं जो ईश्वर का शरीर देख रहा है वह ईश्वर को प्रत्यक्ष देख रहा है। इस बात में उसी को सन्देह है जिसे ईश्वर का सच्चा ज्ञान नहीं है। इस तौर पर जिसने आनन्द के समुन्द्र, ईश्वर का दर्शन इस संसार में ही कर लिया है उसका हृदय कभी अशान्त नहीं हो सकता। उसके लिए संसार ही बैकुंठ और स्वर्ग है।

* * * *

संसार के अणु अणु में ईश्वर व्यापक है। कोई अणु उससे

भिन्न हो कर अपना अस्तित्व नहीं रखता। अणु मात्र में भी किसी अन्य का अस्तित्व मानने से ईश्वर सर्व व्यापक नहीं हो सकता। अतः सारा संसार वही और उसी का शरीर है। अतः ज्ञानवान उसकी खोजमें इधर उधर नहीं भटकते। ज्ञानवान का हृदय कभी अशान्त नहीं रहता। ज्ञानवान उस शान्तिसागर को प्रत्यक्ष देख रहा है।

* * * *

जो अचिन्त्य-शक्ति वृक्षों में काम कर रही है-जो अज्ञात शक्ति नदियों में लहरा रही है-जो विचित्र शक्ति सारे ब्रह्माण्ड में जीवन डाल कर सबको घुमा रही है—वही सर्व व्यापिनी शक्ति हमारे भीतर भी है। हमारे शरीर के भीतर वही शक्ति और वही आत्मा काम कर रही है। अतः हम उस शक्ति से भिन्न नहीं हैं। और यदि वह हमारी ही आत्मा है तो हम उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। जो मनुष्य यहाँ तक विचार चुका है उसका हृदय कभी अशान्त नहीं हो सकता। (इस विषय को विस्तार से जानने के लिए हमारी बनाई हुई पुस्तक "वेदान्त-सिद्धान्त" को देखना चाहिए)

* * * *

भूत और देवता।

भूत कहीं किसी अदृश्य लोक में होते हैं या नहीं इसे जानने या न जानने से मनुष्य का कोई लाभ नहीं है। यदि आप किसी अदृश्य लोक में उनका होना मानते हैं तो मानिये पर इस बात को निश्चय जानियेगा कि वे मृत मनुष्य जीवित मनुष्यों को किसी तरह

का कष्ट नहीं दे सकते। कष्ट का कारण अपना वह मन है जिसमें यह झूठी भावना झूठी कल्पना और झूठा विश्वास समाया हुआ है कि भूत भी इस लोक की कोई वस्तु हैं। तुमारा सारा ज्ञान और सारी विद्या व्यर्थ है यदि तुम्हारे मन में भूतों पर अब तक विश्वास है। जिसके हृदय में भूत है उसे सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती।

* * * *

जो किसी अदृश्य लोक में भूतों का होना स्वीकार करते हूँ उनसे भी हम निश्चित रूप में कहते हैं कि अब तक किसी ने भूतों को नहीं देखा। झाड़ी रही, ठूँठा वृक्ष रहा, कोई जानवर रहा, पर यह निश्चय है कि जिसे तुमने देखा भूत नहीं था। भूतों से डरनेवाले यदि साहस करके अपने भूतों के निकट चले जायँ तो सारा भेद खुल जाय। सच्चे और निर्भर मनुष्य कभी भूत नहीं देखते। जिसके हृदय में भूत है उसमें आत्म-बल नहीं आ सकता। यदि हृदय में शान्ति और आनन्द का अनुभव करते हुए जीवनमुक्त होना चाहते हो तो हर प्रकार के भूतों को हृदय से निकाल दो। भूतों के निकल जाने से हृदय में अपने सच्चे स्वरूप का प्रकाश होगा।

* * * *

भय, अज्ञान और अन्ध विश्वास अनेक प्रकार के भूतों की रचना करते हैं। बहुत से अज्ञानी इन भूतों को देवता भी कहते हैं इन्हीं की पूजा भी करते हैं। अज्ञानियों के देवता वही हैं जो उन्हें डरा सकते हैं या जिनसे वह डरते हैं। दुःख पड़ने पर या दुःखों से बचने के लिये पूजा होती है। इन अज्ञानियों के देवता सताते हैं, बदला लेते हैं भय दिखलाते हैं, दोजख में डालते हैं, और यदि इनकी पूजा न दो तो क्रोध भी कर बैठते हैं ज्ञानियों और

मुक्त लोगों के हृदय से ऐसे भूत देवता, और ईश्वर का भाव निकल जाता है। और जब अन्धविश्वास का परदा हृदय से हट जाता है तो अपनी आत्मा का सच्चा स्वरूप चमक उठता है। इस आत्म-देव के प्रकाश में शान्ति की हवा चलती और आनन्द की वृद्धि होती है।

*   *   *   *

जो पूजा न पानेपर क्रोध करता और भय दिखलाता है, वह ईश्वर और देवता कैसा है ? अज्ञान हृदय में भय की मात्रा अधिक रहती है। यही भय, अन्ध विश्वास और झूठी कल्पना के भीतर ऐसे देवताओं, ऐसे ईश्वर और भूतों की सृष्टि करता है। जिसके हृदय में इस प्रकार के भय लगे हुए हैं वह मुक्त नहीं बद्ध है। हृदय में जब तक भय है तबतक स्वतन्त्रता और मुक्ति कहाँ ? सच्ची स्वतन्त्रता और सच्ची मुक्ति के साथ ही सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द है।

*   *   *   *

भूतों के माननेवाले जिस तरह से भूतों को देखते हैं, जिस अन्ध विश्वास से भूतों द्वारा उनको अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, उसी अन्धविश्वास और झूठी कल्पना से कभी कभी उनके कष्ट छूट भी जाते हैं और विपत्तियाँ टल जाती हैं। पर यह सत्य है कि भूत कोई वस्तु नहीं, उनका अस्तित्व कहीं नहीं है उनके तमाम किस्से गलत हैं। अपनी आत्मा ही अपने विश्वास के अनुसार अनेक रूप धारण करती है। अज्ञान पूर्ण, विपरीत, झूठे और अन्धविश्वास से यही आत्मा भूत होकर कष्ट पहुँचाती और मनुष्य के स्वभाव को डरपोक बना देती है।

*   *   *   *

इस अन्धविश्वास से हानि अधिक और लाभ कम होता है। अतः अज्ञान को दूर कर, अन्धविश्वास को जलाकर, भय को हृदय से निकाल कर, अपने आत्मतत्त्व को पहचानो। बिना पहचाने भी जब यह अनेक देवी देवताओं के रूप में तुम्हारी सहायता करता है तो पहचानने पर और भी अधिक सहायता करेगा। अज्ञान वश अपनी आत्मा और अपने विश्वास को ही देवी देवता और भूतों के रूप में बदलकर लोग उससे डरते और कष्ट उठाते हैं। सच्चा ज्ञान बतलाता है कि यह सब अपनी आत्मा ही है। ऐसा ज्ञान होते ही सब भय छूट जाते, बिपत्तियाँ टल जातीं और अपनी आत्मा सर्वदा लाभ पहुँचाने के लिये तैयार रहती है। अपनी आत्मा अपने को कष्ट नहीं दे सकती, कष्ट देता है अपना झूठा विश्वास। आत्मा तो गुणों का भण्डार, शक्तियों का खजाना और शान्ति तथा आनन्द का समुद्र है। योगियों को चाहिए कि इसे तत्त्व से पहचान कर इस शान्ति और आनन्द के समुद्र में निर्भय होकर स्नान करें।

* * * *

शान्ति और ब्रह्मानन्द।

एक मौलवी ने स्वप्न देखा कि उनके सामने एक लम्बी दाढ़ीवाला शैतान आया। उन्होंने उसकी दाढ़ी पकड़ कर जोर से एक थप्पड़ मारा। थप्पड़ लगते ही नींद टूट गई। देखा कि वह अपनी दाढ़ी पकड़े हुए हैं और थप्पड़ भी उन्हीं के मुँह पर है। बात यह है कि वह शैतान मौलवी से अलग नहीं था। स्वप्न में हमारी ही आत्मा एक से अनेक रूप धारण कर लेती है। आत्मा ही सड़क बनती, आत्मा ही गाड़ी बनती, आत्मा ही उसे खींचती और आत्मा ही उसपर सवार होती है। शैतान, भूत, देवी देवता

और जड़-चेतन सारा संसार आत्मा की कल्पना है। जिसका जैसा ज्ञान है जिसकी जहाँ तक पहुँच है उसके अनुसार वह अपनी देवी-देवता और भूत प्रेम की कल्पना कर लेता है। जैसे जैसे मनुष्य का ज्ञान उन्नति करतागया वैसे ही वैसे उसके देवी-देवता भी उन्नति करते गये। पहले जो भूतों का सेवक था वह उन्नति करके देवताओं का सेवक हो गया। सारा संसार है। वही एक से अनेक हो गया है। जड़ चेतन सब आत्मा है। आत्मा निष्पाप, पवित्र और आनन्दमय है। अतः सारा संसार पवित्र, निष्पाप और आनन्दमय है।

* * * *

योग।

(४)

जैसे हिमालय के निकट जानेपर ठंडी हवा शरीर को स्पर्श करने लगती है, उसी तरह से ईश्वर की ओर झुकते ही ब्रह्मानन्द और शान्ति की हवा हृदयको स्पर्श करने लगती है। थोड़ी देर के लिए सांसारिक तापों से जला हुआ हृदय शीतल हो जाता है। यही कारण है कि कुछ न कुछ सबकी गति ईश्वर की ओर है।

* * * *

यह मत जानो कि योग वा ईश्वरी ज्ञान से मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है वा वह गृहाश्रम के योग्य नहीं रहता वा उससे सांसारिक काम ही नहीं हो सकते, कभी नहीं। जिस तरह मनुष्य रात्रि में सोकर फिर से काम करने के योग्य और श्रम रहित हो जाता है उसकी इन्द्रियाँ ताजी और मन प्रफुल्लित हो जाता है उसी तरह दिन में एकबार कुछ देर के लिए ईश्वर में चित्त लगाने से सांसारिक विषयों से सर्वथा अलग हो जाने से योगावस्था में

पहुँचकर समाधि का शान्ति सुख भोग लेने से, सरीर में एक नवीन शक्ति, नवीन उत्साह और नवीन जीवन उत्पन्न होगा, जिससे तुम अपने कर्त्तव्यों का इस खूबी से पालन करोगे कि सांसारिक लोग उसे देख कर हैरान होजायँगे। योग मनुष्यों को मुर्दा नहीं बनाता किन्तु जीवन डालता है। योग से मनुष्यों की शक्ति क्षीण नहीं होती, किन्तु पुष्ट होती है। योग से शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियाँ प्रबल होंगी और हृदय में ब्रह्मज्ञान का प्रकाश होगा।

* * * *

ब्रह्मज्ञान कहता है कि विषयों में आसक्त मत हो—तुम उसके वशीभूत मत हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम उससे अलग हो जाओ या उसका उपभोग ही न करो, कभी नहीं। जो मक्खी अत्यन्त आसक्त होकर मधु पर कूद पड़ती है, वह उसे भोग नहीं सकती—वह उसी मधु में लिपटकर मर जाती है।

* * * *

देखो! मक्खी आयी तो थी मधु को भोग करने पर, मधु ने उसे ही भोग लिया—आयी तो थी मधु को खाने पर, मधु ने उसे ही खा लिया। कैसा आश्चर्य्य है! परन्तु एक बुद्धिमती मक्खी-आती है, वह आसक्ति रहित होकर मधु के किनारे—मधु से अलग-बैठ जाती है। अतः यदि तुम्हें विषयों को भोगना है, अपने जीवन को आनन्दमय बनाना है, तो विषयों की आसक्ति छोड़ दो—उसके अत्यन्त प्रेम से अलग हो जाओ—उसके पास इस प्रकार से रहो मानो तुम उससे किनारे हो। यह केवल सुन लेने या कह देने की बात नहीं है, आज ही से इसका साधन आरम्भ कर दो और देखो कि तुम्हारी आत्मा के भीतर कैसे विचित्र और

शान्तिदायी आनन्द उमड़ रहे हैं। इसी आनन्द की उमड़ को ब्रह्मानन्द की उमड़ और उसकी लहर कहते हैं।

* * * *

चाहे तुम संसार का प्रेम न छोड़ो—चाहे तुम विषयों से अलग न हो, पर समय आवेगा कि, संसार स्वयम् तुम्हें छोड़ देगा—विषय स्वयम् तुम से अलग हो जायँगे। अतः तुम्हें, अन्त को जो छोड़ने वाला ही है—जो एक न एक दिन अवश्य अलग होगा, उसे आप ही क्यों नहीं छोड़ देते? उससे आप ही अलग क्यों नहीं हो जाते? सच कहा है—अन्तहुँ तोहिं तजेंगे मूरख! तू क्यों न तजै अबहीं से! स्मरण रहे यदि किसी को तुम छोड़ दोगे—तो उसके वियोग का दुःख तुम्हें नहीं होगा। अन्यथा उसके छोड़ने पर तुम वियोग में मर जाओगे। अतः योग का मार्ग पकड़ो और संसार के विषयों से अलग हो जाओ। पर याद रखना कि अलग होने और छोड़ने का अर्थ आसक्ति रहित होने से है न कि संसार से भागजाने से।

* * * *

नदी आनन्द की सामग्री है, आनन्द की जगह है। पर यह आनन्द वही उठा सकता है जो नदीके ऊपर तैर रहा हो—जो उस नदी से निकल कर उसको वश में करके, उसके मस्तक पर घूम रहा हो—जो एक प्रकार से उससे पृथक और अलग हो। पर वही नदी उसके लिये नरक, दुःख दायिनी और मौत हो जाती है जो उसके भीतर हो। ठीक यही दशा इस संसार रूपी नदी की भी है। यह संसार स्वर्ग है आनन्ददायी है और अमृतत्त्व का देनेवाला है। पर उसी के लिये जो इसको वश में कर, इससे विरक्त रहकर, इसमें से निकल कर, इसके ऊपर विचर रहाहो, इसके ऊपर तैर रहा हो।

क्या आप नहीं जानते कि पोखरे के भीतर कीचड़ होता है और ऊपर फूला हुआ कमल ? उसी जल और कीचड़ से उत्पन्न होकर कमल क्यों इतना सुन्दर सुडौल और सुगन्धित है ? इसलिये कि वह पानी में रहते हुए भी पानी से अलग और बेलाग है।

* * * *

तुम लोगों में से कितने ऐसे हैं जिन्हों ने संसार को नहीं भोगा है किन्तु संसार ही ने उन्हें भोग डाला है। अन्न को नहीं खाया है किन्तु अन्न ही ने उन्हें खा डाला है। यही कारण है कि शरीर और मन तुम्हारे गुलाम नहीं किन्तु तुम्हीं उनके गुलाम हो—अब वे तुम्हारे वश में नहीं किन्तु तुम्हीं उनके वश में हो। रोते क्यों हो ? सारी दुर्बलता, सारी आपत्तियाँ, और सारे रोग तुम्हारे ही बुलाने से आये हैं, तुमने स्वयम् उनको निमन्त्रण दिया है, नहीं तो सारा संसार तुम्हारे लिये है तुम संसार के लिये नहीं। शरीर और मन तुम्हारे गुलाम हैं—तुम उनके मालिक हो। विचार करो, इस संसार के बनाने वाले, मालिक और ईश्वर तुम्हीं हो। अपनी अज्ञानता से दुर्बल, रोगी और नीच बने हो।

* * * *

योग समाधि।

कभी भी हम लोगों का मन तत्वविचार में, सत्य की खोज में वा वैज्ञानिक रहस्यों के उद्घाटन में, इस प्रकार से तन्मनस्क हो जाता है कि वह थोड़ी देर के लिये संसार से सर्वथा अलग हो, अपने विचार में ही तन्मय होता है। इसी अवस्था को योगविद्या में ज्ञान-धारणा कहते हैं। इसके बाद ज्ञान-समाधि की अवस्था आती है। ज्ञान-समाधि की अवस्था वह है, उस समय प्राप्त होती

है, जिस समय पूर्वोक्त विचारतन्मय पुरुष, अपने लक्ष्य स्थान पर, अपने गन्तव्य स्थान पर, पहुँच कर, नीचे आने की वात वा संसार में लौटने की वात भूल जाता है।

* * * *

कभी कभी वैज्ञानिक लोग अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचकर, अपनेमन्तव्य विषय को जानकर, मनमें इतने प्रसन्न होते हैं कि उसी समय नीचे आजाते, और धारणा पदसे च्युत हो संसारमें गिर कर, आनन्द से उछलने लगते हैं। इन लोगोंको ज्ञान समाधि प्राप्त नहीं होती, किन्तु ज्ञान धारणा तक पहुँच कर नीचे गिर पड़ते हैं। यह अवस्था प्रायः उन तत्ववेत्ताओं की हुआ करती है जिनका मन ब्रह्म ज्ञानको छोड़कर. प्राकृतिक विज्ञान, पदार्थ विज्ञान वा सांसारिक आविष्कारों की ओर झुकता है।

* * * *

जिसका विचार मनस्तत्व की ओर झुकता है-जो ब्रह्म विचार में लगता है, वह कभी कभी एक ऐसी दशाको प्राप्त होता है—एक ऐसी वस्तुको पा जाता है—जो सुख दुःख से परे सच्चिदानन्दरूप, परम पद और सर्वोत्तम पदार्थ है। वह एक ऐसा पदार्थ और एक ऐसी वस्तु है जिसे आप वास्तव में वस्तु वा पदार्थ भी नहीं कह सकते। वहाँ वस्तु और अवस्तु कुछ नहीं, वह दूसरी चीज नहीं केवल आपकी सच्ची आत्मा है।

* * * *

इस अवस्था में पहुँचकर मनुष्य जिस अनिर्वचनीय ज्ञान को प्राप्त होता है, वह ऐसा ज्ञान है कि न उसे जानकर मनुष्य सुखी होता न दुःखी ही होता है, किन्तु निज ज्ञानस्वरूप अपने आप को प्राप्त हो समाधि में स्थित हो जाता है। सुख वा दुःख दोनों ऐसे

पदार्थ हैं कि इनका संसर्ग होते ही मनुष्य समाधि से वा अपने सहज स्वरूप से गिर पड़ता है। यही कारण है कि पदार्थ विज्ञान वा प्राकृतिक विज्ञान के ज्ञाता यद्यपि उसी जगह से—उसी अवस्था के निकट से अपने नवीन आविष्कारों को लाते हैं, पर उस अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सकते। पर यह बात याद रहे कि बिना योग-पद समाधि-पद वा धारणा-पद के निकट गये आप किसी नवीन और आश्चर्यजनक यन्त्र का भी आविष्कार नहीं कर सकते। अतः योग और शान्ति में स्थित होना सबके लिये आवश्यक है। शान्ति की अवस्था विज्ञान की कुंजी है।

* * * *

योग की पूर्वोक्त अवस्था तक पहुँचनेवाले अन्य देशों में भी पाये जाते हैं। पर जिस प्रकार से अन्य देशवालों का समाधि तक पहुँचना कठिन है उसी प्रकार से भारतवासियों के लिये इस समय किसी नवीन यंत्रका आविष्कार करना कठिन है। कारण यह है कि प्राकृतिक विज्ञान के लिये बहुत सी सामग्रियों रूपयों और एक प्रयोगशाला की आवश्यकता है जिसे वैज्ञानिक अपने अनुभव किये हुए ज्ञानकी परीक्षाओं में बिना किसी रोक टोक के लगा सकें। भारतीय वैज्ञानिकों के पास रूपया नहीं है। पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा भी बिना सामग्री के या बिना एक बड़े प्रयोगशाला के नहीं हो सकती। पर ब्रह्मविचार के लिये उस अत्युत्तम सुख और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने के लिये रुपयों सामग्रियों एवम् कष्ट साध्य साधनों की भी आवश्यकता नहीं। वह एक ऐसा पदार्थ है जिसके लिये ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं किन्तु जो कुछ तुम्हारे पास है उसे भी त्याग कर ऊपर उठ आओ।

* * * *

३. योग का स्वरूप केवल त्याग है । एक घण्टे के लिये सब कुछ त्याग कर एक आसन से बैठ जाओ । चलना, काम करना, देखना सुनना और बोलना सब कुछ त्याग दो। शुभ वा अशुभ अच्छा वा बुरा किसी प्रकार का विचार मनके भीतर आने न दो। ज्यों ही कोई विचार मनके भीतर घुसे उसे वहीं त्याग दो। इसी प्रकार से प्रत्येक भावना को मनसे निकालते जाओ। अन्त में वही बच रहेगा जो तुम्हारा इष्ट है। यह भी स्मरण रखना कि अन्त में वह भावना भी त्यागनी पड़ेगी जिस भावना से तुमने सबका त्याग किया है।

* * * *

४—जबतक चञ्चलता नहीं छोड़ोगे—जबतक विषयों के दास बने हो—जबतक मनरूपी मदारी, तुम्हें विषयवासना रूपी डोरी में बाँधे हुए नचा रहा है-तबतक तुम्हें वह अनाहतध्वनि कभी श्रवण-गोचर नहीं हो सकती जिसके सुनने से आनन्द और शान्ति की लहर उठती एवं हृदय में अमृत की वर्षा होती है। यह अन्तःकरण एक बहुत बड़ा सरोवर है, इसमें जिस समय वासनारूपी पत्थर गिरता है यह चंचल हो उठता है और आनन्दरूप परमात्मा की छाया लुप्त हो जाती है।

* * * *

५—तुम योगको बहुत कठिन समझते हो, पर यह बात नहीं है, वह संसार के सारे कामों से सरल और आसान है । कठिन तो वह कार्य्य है जिसके करने में किसी सामग्री की आवश्यकता हो-किसी पदार्थ को खोजना हो-किसीको ग्रहण करना हो-कहीं जाना हो। पर यह तो वह वस्तु है जो तुम्हारा साक्षात रूप है, तुम्हारे पास है । इसमें किसी वस्तु को ग्रहण करना नहीं—

किन्तु जो कुछ तुम्हारे पास है उसे त्याग देना है। तुम्हीं सोचो बटोरने बचाने और रक्षा करने में जो कठिनाई है वह त्यागने, छोड़ने और फेंकदेने में वा लुटा देने में कमी हो सकती है? कभी नहीं। तुमने जो कुछ जमा कर रक्खा है, तुम जिसे पकड़े बैठे हो उसे वहीं छोड़कर उठ आओ यही योग है, यही त्याग है।

* * * *

६. जिस समय ऊपर की ओर चलोगे पहले पहल तुम्हें कुछ घबड़ाहट मालूम होगी ऐसा बोध होगा मानो अब हमारा प्राण निकल जायगा। पर कर्मवीरों को इससे डरना नहीं चाहिये क्योंकि इस घबराहट में किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। केवल शंका से अपने तई एक नई अवस्था में देखकर एक नई घटना को देख कर घबराहट होती है। पर यह दशा भी पहली ही बार होती है, दूसरी बार से नहीं, फिर तो वह अपने घरका मार्ग हो जाता है। जिस समय तुम धैर्य्य धारण करके, निःशङ्क हो ऊपर चढ़ जाओगे तो तुम्हें वह ज्योति दिखलाई देगी जिसे देखकर तुम अपार आनन्द में मग्न हो जाओगे। यह वह लोक है जहाँ शीतल प्रकाशपूर्ण तारों के समान श्वेत मोतियों की वर्षा होती है और हृदय अमृत के समुद्रपर लोटता हुआ विदित होता है। इस योग को यदि सीखना चाहते हो "योग साधन" देखो।

* * * *

पर याद रखना कि यह उच्च कक्षा की समाधि नहीं है इसका नाम है "सम्प्रज्ञातसमाधि"। "निर्विकल्प" वा "असंप्रज्ञात" समाधि इसके भी ऊपर है—इसके भी परे है। पर रास्ता यही है।

* * * *

वैराग्य से आनन्द।

१—बड़े से बड़े कष्टका सामना करते हैं, दुर्गम और गहन स्थानों में भी प्रवेश करजाते हैं, पर मनका उत्साह भंग नहीं होता। क्यों किसकी खोज में ? आनन्द के लिये, आनन्द की खोज में। लौकिक वा पारलौकिक चाहे कोई कार्य्य हो यदि आप उसमें जी जान से लगे हैं तो इसी वास्ते कि ऐसा करने से आनन्द की प्राप्ति होगी, सुख मिलेगा। पर किसी कार्य्य में सुख कब मिलता है इसपर बहुतों ने विचार नहीं किया है। आपको मिठाई न मिलने से दुःख क्यों है ? इसलिए कि आपको मिठाई की इच्छा है। आपको मिठाई मिल गयी, आपने मिठाई खाली आपको सुख मालूम हुआ। इस सुख का कारण यह है कि अब आप से मिठाई की इच्छा निवृत्त हो गयी, थोड़ीदेर के लिए अब आपको मिठाई खाने की इच्छा न रही, उससे संतोष हो गया। यही इच्छा की निवृत्ति, वैराग्य वा संतोष आनन्द का कारण है।

* * * *

२—आपका किसी स्त्रीसे कामजन्य प्रेम है, आप उसका समागम चाहते हैं—आप उसके लिए दुःखी हैं—आप उसकी प्राप्ति के लिए प्राण पणसे यत्न करते हैं। कुछ दिनोंके बाद वह स्त्री मिलगयी, आपने उसके साथ समागम किया, आपको सुख या आनन्द मिला। कब ? जब समागम करने से थोड़ी देरके लिए भोग की इच्छा निवृत्त हो गयी, भोग से वैराग्य उत्पन्न हुआ वा भोग से सन्तोष हुआ।

* * * *

३—सिद्धान्त यह निकला कि हमें भोग वा, संसार में भी आनन्द उसी क्षण में मिलता है जब हृदय से इच्छा की निवृत्ति हो जाती है, मन भोग की ओर से फिर जाता है वा हृदय के भीतर संतोष और वैराग्य उत्पन्न होता है। अतः विचार करने से सुख और आनन्द का वास्तविक स्वरूप वैराग्य और सन्तोष ही मालूम होता है।

* * * *

४—वह मनुष्य जो संसार के विषयों से विरक्त नहीं—जिसमें संतोष नहीं—वही दुःखी और दीन है, उसी मनुष्य की आत्मा जीवात्मा कहलाती है। पर जिसका मन संसार से सर्वथा निवृत्त हो गया है—हृदय में सच्चा संतोष और वैराग्य उत्पन्न हुआ है—उसका आत्मा जीवात्मा नहीं-वह परमात्मा हो चुका-वह सुख स्वरूप, आनन्दस्वरूप और साक्षात सच्चिदानन्द ईश्वर है।

* * * *

यदि एक घंटे के लिए भी आप में सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो आप अपने आत्मा के भीतर उस आनन्दस्वरूप को अवश्य पावेंगे जिसे परमात्मा कहते हैं। अतः वह मनुष्य धन्य है—वह जीवनमुक्त है—जिसके हृदय में सन्तोष और वैराग्य विराजमान है, क्योंकि वैराग्य ही आनन्द का मूल और सुख का पिता है।

* * * *

ब्रह्ममार्ग में आलस्य नहीं है।

१—कुछ लोगों का यह कथन है कि संतोष से ही भारत ऐसी अवनत दशाको प्राप्त है। पर यह नितान्त भूल है। क्या भारत में जिसकी गिरी दशा है वे सब सन्तोषी हैं? कदापि नहीं। वे तृष्णा-कुल हैं, और भोगलोलुप हैं। वे क्षुद्र वासनावाले, विद्याहीन, आलसी अकर्मण्य और अज्ञानी हैं। किसीकी जमींदारी बिकी है—किसीने अपना व्यवसाय भ्रष्ट किया है-तो, उसका कारण सन्तोष नहीं किन्तु उसका कारण विषय भोगकी अधिकता, अज्ञानता और आलस्य ही निकलेगा। अज्ञानता ही के कारण आप सन्तोष का सच्चा अर्थ नहीं जानते और उसके मत्थे दोषारोपण करते हैं। सच्ची बात तो यह है कि जिस जाति में अज्ञानता के कारण विषयलोलुपता अधिक हो जाती है, उस जाति का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, वह जाति निर्बल हो जाती है। वीर्य्यहीन जाति के पुरुष निर्बल, उत्साहहीन, अकर्मण्य, आलसी, कमजोर और रोगी होते हैं। ठीक इसी प्रकार से जो संसारासक्त नहीं हैं—जो विषयी और विषयलोलुप नहीं हैं वह वीर्य्यवान, बलवान, पुरुषार्थी, कर्मवीर, रोगमुक्त, उत्साहयुक्त, और आलस्यहीन होते हैं।

* * * *

एक गूढ़ न्याय है कि जो निष्काम कर्म में लगा रहता और कर्मण्य होता है, उसका मन विषयोपभोग में लिप्त नहीं होता, उसके हृदयके भीतर विषय-वासनाएँ नहीं आतीं, उसका चित्त एकाग्र और हृदय निश्चल रहता है। परन्तु जिसका शरीर काम नहीं करता और अच्छा अच्छा भोजन करके बैठा रहता है, उसका मन विषय-वासनाओं में दौड़ा करता और कभी शान्ति नहीं पाता है।

* * * *

२—शरीर का धर्म काम करना है। शरीर काम ही के लिये बनाया गया है। यदि देखिये तो एक क्षण भी शरीर बिना काम के नहीं रह सकता। विशेष कर वैराग्य उत्पन्न होनेपर विषयों से अलग होनेपर-शरीर विशेष शक्तिशाली और नीरोग हो जाता है। उस समय वह बिना काम के नहीं रह सकता। ऐसे समय में विरागीका शरीर निष्काम कर्म में वीरता के साथ लग जाता है और हानि लाभमें समबुद्धि होकर अपने कर्त्तव्य कर्म को पूरा कर दिखाता है।

* * * *

बिना विषयवासनाको दूर किये किसीको अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता। विषयवासना, फलेच्छा, असन्तोष, और तृष्णा ऐसी वस्तुएँ हैं जो मनुष्यको रोगी और निर्बल कर देती हैं। अतः जो रोगी और निर्बल है उससे काम और उन्नति की आशा व्यर्थ है। आप सन्तोष के सच्चे अर्थ को समझिये। सन्तोष का अर्थ निष्कर्मण्य होना नहीं है क्योंकि जबतक शरीर में प्राण है तबतक निष्कर्मण्य होना असम्भव है। सन्तोषी और असन्तोषी में भेद केवल इतना ही है कि सन्तोषी अपने कर्त्तव्य कर्म को वीरता के साथ पूरा करता और असन्तोषी रोगी होकर बैठा मक्खी मारता है। काम दोनों करते हैं। एक का काम उत्तम और दूसरे का निकृष्ट है। असन्तोषी और विषयी पुरुषों का काम ऐसा है जो नहीं के बराबर होता है। अतः सन्तोषी योगी और विरक्त ही सच्चे कर्मण्य और कर्मवीर हैं, अन्य नहीं। आप कर्मण्य होते हुए भी अकर्मण्य हो। इसलिये सन्तोष का सच्चा अर्थ समझो, मनुष्यों के लिए सन्तोष और वैराग्य से बढ़कर दूसरा कल्याणप्रद और शान्तिदायी मार्ग नहीं है।

* * * *

३—जो आलस्य और निष्कर्मण्यता से विरक्त नहीं हो सकता उसका विषयों से विरक्त होना असम्भव है। जो आलस्य पर विजयी नहीं वह विषयों पर विजयी कैसे हो सकता है? जो विद्याभ्यास नहीं कर सकता वह योगाभ्यास क्या कर सकता है? जो गीदड़ देख कर भी डर जाता है वह सिंह का शिकार कैसे करेगा? सिंह के शिकार के समय जैसी वीरता फुर्ती और चैतन्य होने की आवश्यकता है ठीक वैसीही वीरता, विचार, विद्या और चैतन्य विषयरूपी सिंह को जीतने के लिए भी आवश्यक है। बल्कि सिंह-पर विजयी होना आसान है वह थोड़े ही परिश्रम और युक्तियों से जीता जाता है पर विषयों पर विजयी होना बहुत ही कठिन है, इसको कोई विरला ही जानता है। सिंहका जीतने वाला वीर नहीं है, वीर वह है जिसने विषयों को जीता है। श्रीराम चन्द्र के समय में "महावीर" उसी का नाम था जो ईश्वर का पूर्ण भक्त, सच्चा ब्रह्मचारी और संसार से सर्वथा विरक्त था। राम के हाथ से रावण और बालि ऐसे बली उसी समय मारे गये जिस समय उनका मन विषयलोलुप और विषयों का दास बन रहा था। रावण और बालि यदि उस समय विषयी न हुए होते तो उनपर विजयी होना असम्भव था। द्रौपदी का चीर खिंचाने वाले विषयी दुर्योधन की पराजय और गीता के सुननेवाले कर्मयोगी अर्जुन की जीत क्या प्रकट करती है? इसे विचारिये और इसका मनन कीजिये। थोड़े ही अभ्यास के अनन्तर वह शान्तिदायी वैराग्य उत्पन्न हो जायगा जिसका आश्रय हमारे बड़े बड़े ऋषियों और महात्माओं ने लिया है—जिसमें सिवाय आनन्द के दुःख नहीं देखा गया।

* * * *

४—खूब कसरत कीजिये योगाभ्यास कीजिये और कड़ी मिहनत

के साथ अपना काम करते रहिये। इससे यह चंचल मन थका रहेगा और विषयों की ओर नहीं दौड़ेगा। शरीर से काम न लेने पर—बेकार रहने पर—मन विषयों का दास बन जाता है और मनुष्यों को सांसारिक भोगोमें पटक देता है। यह भोग ही शान्ति का नाशक और त्रिविध रोगों का उत्पादक है। पाठशाला की छुट्टियोंमें लड़के, कचहरी की बड़ी छुट्टियों में अमले, प्रवाह रुकने पर नदियाँ और पेनशन पाने पर सिपाही गए प्रायः रोगी पाये जाते हैं। जिसे काम से छुट्टी नहीं उसे मरने और बीमार पड़ने की भी फुर्सत नहीं मिलती। मृत्यु का मुख्य द्वार आलस्य है। मृत्यु भी खड़े और काम करते हुए मनुष्यों से डरती है। यह प्रायः उसी के पास देखी गयी जो चारपाई पर लेट रहा है। आलसी और शक्तिहीन पर सभी आक्रमण करते हैं। अतः विषतुल्य विषयोपभोग जो मनुष्य को आलसी और शक्तिहीन बना देता है उससे प्रयत्न करके अलग हो जाओ। यह विद्वानों और वीरोंका परम पुरुषार्थ और परम कर्तव्य है। संसार के बड़े बड़े दार्शनिक, बड़े बड़े वैज्ञानिक, बड़े बड़े आविष्कर्ता और बड़े बड़े समरविजयी वही हुए हैं जो सांसारिक विषयोपभोग में आसक्त नहीं थे।

*　　*　　*　　*

८—अधिक उपयोगी विषयों का जाननेवाला पूजनीय, वन्दनीय वा श्रेष्ठ कभी नहीं हो सकता। श्रेष्ठ वह है जो उसके अनुसार आचरण भी करता है। वैराग्य, सन्तोष, वेदान्त और योगपर अच्छे अच्छे निबन्धों और लेखों को लिख लेनेवा पढ़ लेने से कुछ लाभ नहीं है। लाभ उसके अनुसार अभ्यास करने और चलने से होता है। कुछ लोगों को पुस्तक पढ़ने का व्यसन होता है। अच्छी से अच्छी पुस्तक को पढ़ डालते हैं सर्वदा पुस्तकावलोकन किया

करते हैं। लेखक की लेखनशैली और उसकी भाषा की सरसता, प्रौढ़ता और सुन्दरतापर विचार करते और मग्न रहते हैं पुस्तक के कीड़े बन जाते हैं। पर इससे उनका लाभ कुछ भी नहीं होता।

* * * *

१ वे पुस्तकों के पढ़ने वाले विषयों को जान लेते हैं—उस पर दूसरे को शिक्षा दे सकते हैं—उसपर व्याख्यान दे सकते हैं—इन पठित विषयों पर अच्छे से अच्छा लेख लिख सकते हैं—पर इससे स्वयम् उनका उद्धार नहीं हो सकता न उनके हृदय को सच्चा आनन्द या सच्ची शान्ति मिल सकती है। अतः पढ़ने सुनने और बात चीत करने से अधिक समय साधन करने में—आचरण करने में—अपने बुरे स्वभावोंके जीतने में—लगाओ। आत्मोद्धार का यह सबसे अच्छा और सच्चा रास्ता है। मित्रों की गपशप समाचारपत्रों का अधिक पढ़ना, उपन्यासों में दिल बहलाना इत्यादि और भाँग, गाँजा, शराब, हुक्का सिगरेट सुरती, पानादि व्यर्थ व्यसनों को छोड़कर अपना अमूल्य समय बचाओ और वह समय योगसाधन आत्मचिन्तन और ऐसे विचारों में लगादो कि जिस उपदेश को हमने पढ़ा है उसके अनुसार चलने में कितनी सफलता प्राप्त की है कितनी बाकी है। बारम्बार ऐसा विचार करने से-बारम्बार चिन्तन करने से—तथा जब जब मन और शरीर सिद्धान्त के विरुद्ध चले तब तब बारम्बार चैतन्यता के साथ रोकने से कुछ दिनों में तुम सफल मनोरथ हो जाओगे। पर बड़े धैर्य्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। तथापि सच्चे साधकों के लिये अति सरल और सुगम है।

* * * *

दुःख का रहस्य।

१—सुख की इच्छा ही ने दुःखको उत्पन्न किया। जीवात्मा को जब सुखकी इच्छा हुई, उस समय उसने दुःखपूर्ण संसार की कल्पना की! इस जगत् को उत्पन्न किया। यदि सुख की इच्छा उत्पन्न न हुई होती तो यह संसार और उसका दुःख भी उत्पन्न न हुआ होता। बिना दुःख के सुख का ज्ञान हो ही नहीं सकता। मीठे मुँह शरबत की मिठाई नहीं मालूम होती। बिना भूँख का दुःख उठाये भोजन का सुख अनुभव में नहीं आता। अतः यह निश्चित है कि सुख के लिये दुःख हमने ही उत्पन्न किया। दुःख हमारा बनाया हुआ हमारी इच्छा है। फिर जो वस्तु हमारी बनायी हुई है—जिसे हमने स्वयम् निमन्त्रण दिया है-उसके आने पर घबड़ाना उसको सहन न करना सिवाय मूर्खता के और क्या हो सकता है? यदि तुम दुःख उठाना नहीं चाहते, सुखकी इच्छा छोड़दो-सुखमें सुखी न हो। सुखमें प्रसन्न न होनेसे, दुःख सहने की शक्ति आपसे आप आजायगी, ऐसी अवस्था में आपसे आप मनमें दुःख का अनुभव नहीं होता। जो पुत्र के जन्म लेनेपर सुखी नहीं होता वह उसके मरने पर भी कदापि दुःखी न होगा। जो सुख में अभिमान नहीं करता—जिसका मन और स्वभाव सुखमें नहीं बदलता—वह दुःख में कदापि विचलित नहीं हो सकता। उसके लिए संसार ही वैकुण्ठ है—संसार ही विष्णुलोक शिवलोक और स्वर्ग है। जिसने सुख दुःख को जीत लिया जिसका चित्त सुख-दुःख मानापमान और लाभ हानिमें समान है। वह मनुष्य भाग्यवान और धन्य है—वह स्वयं इन्द्र, विष्णु और शिव है जिसपर सुख और दुःख का प्रभाव नहीं पड़ता—जो सुख और

दुःख से बिल्कुल अलग है। अतः वेदान्त कहता है कि समानता धारण करो समत्व ही आनन्दका कोष और शान्तिका समुद्र है।

* * * *

२. जैसे दिन के बाद रात, और रात के बाद दिन बराबर आता और चला जाता है, उसी तरह सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख बराबर आता और चला जाता है। सच्ची बात तो यह है कि रात और दिन ये दोनों परस्पर एक दूसरे के कारण हैं। इनमें से एक दूसरे को, उत्पन्न करने के लिए आता, और उसे उत्पन्न कर चला जाता है। अतः जो दुःख सुखको उत्पन्न करने के लिए आया है—जो सुख का कारण है—जो सुखका पिता है—जो मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि उसके पास सुख आ सके—इस दुःखको देखकर घबड़ाना अज्ञानता और मूर्खता है। ऐसे दुःख को पाकर प्रसन्नता के साथ सहन करो, उसका स्वागत करो, उससे भयभीत होना मानो अपने को मृत्यु के मुख में डाल देना है यदि तुम अपनी आत्मा की उन्नति और अपने हृदय में शान्ति चाहते हो तो वीरता के साथ—प्रसन्नता के साथ—दुःख का सामना करो। केवल सांसारिक धन वा बल वा केवल पुस्तकों के पढ़ने से हृदय में शान्ति की धारा न बहेगी।

* * * *

३—जैसे संसार की और वस्तुएँ अनित्य और नाशमान् है, उसी तरह दुःख भी अनित्य और नश्वर है। इस बातको खूब दृढ़ जान लो कि जिस समय तुम्हारे हृदय में इस का निश्चय हो जायगा, दुःख रूपी भूत कभी अपना प्रभाव न डाल सकेगा। देखो जिसे न्यायाधीश ने यह सुना दिया कि तुम्हें एक महीने के बाद फाँसी की सजा मिलेगी, उसका फाँसी के पूर्वका सारा दिन

व्यर्थ है—वह उसी रोज मर चुका। कारण इसका यह है कि जिस समय से, किसी सुख वा दुःख के आने का दृढ़ निश्चय हो जाता है, उसका प्रभाव उसी समय पड़ने लगता है। अतः आप को यदि इसका दृढ़ निश्चय हो जाय कि दुःख नाशमान् अनित्य, शीघ्र कट जाने वाला वा आगमापायी है तो वह आप को दुःखी नहीं कर सकता। जिसमें तितीक्षा नहीं है—जो दुःख को नहीं सहता उसका दुख भी रोने वा चिल्लाने से कम नहीं होता किन्तु और अधिक दुखदायी होता है। अतः जो दुःख तुम्हारे ऊपर पड़ा है उसका सहन करो, सहन करने से दुःख कम हो जाता है शीघ्र कट जाता है। जब बहुत गर्मी पड़ती है तो आँधी आप से आप आ जाती है—चारो ओर से टूट पड़ती है। ठीक इसी तरह जहाँ पर दुःख होता है, वहाँ सुख आप से आप टूट पड़ता है। इस सिद्धान्त का यह मतलब नहीं है कि तुम दुःख के दूर करने का उद्योग न करो—कभी नहीं। पर इस सिद्धान्त के अनुसार जो घबड़ाता नहीं डरता नहीं, चिल्लाता और रोता नहीं वही दुःख काटने का उद्योग भी कर सकता है। पर जो दुःख में घबड़ा गया—दुःख में अपने सच्चे स्वरूप को भूल गया—वह उद्योग क्या कर सकता है? ऐसे मनुष्य का जीवन अन्धकार मय है।

* * * *

अपना गुरु आप।

४—दूसरे की शिक्षा से आचरण शुद्ध नहीं हो सकता, उलटा हृदय में ईर्षा, क्रोध और द्वेष उत्पन्न होता है। अतएव

अपना सच्चा गुरु अपनी आत्मा ही है। अतः यदि उन्नति की सीढी पर पैर रखना है तो अपनी आत्मा को अपना गुरु बनाओ इसी से दीक्षा लो। तुम्हारे में जो कमी है—तुम्हारे में जो त्रुटि है तुम्हारे में जो बुरे स्वभाव हैं—उन पर नित्य ध्यान दो, उन्हें दूर करने का नित्य प्रयत्न करो। आज हमारी इतनी कमी दूर हुई अभी हममें इतनी त्रुटियाँ रह गयी हैं—अभी हम ब्रह्मविद्या के अमुक अमुक अंश का पालन नहीं कर सके हैं—इन विषयोंपर नित्य विचार करो। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो—यदि तुम्हें अपने जीवन का सुधार करना है तो अपने मन रूपी घोड़े की लगाम अपनी आत्मा के हाथमें देकर सर्वदा सतर्क रहो। इनका रोकना तुम्हारा ही काम है यह दूसरे से नहीं हो सकता। अपने मनकी लगाम पकड़े हुए इस तौर से सतर्क और खबरदार रहो जैसे जङ्गल में बारहसिंगे सतर्क और खबरदार रहते हैं। सर्वदा अपने मन पर वैसाही ध्यान रक्खो जैसे साइकिल का सवार बैलेन्सपर ध्यान रखता है।

* * * *

सत्य।

१—इस बात की खोज में न रहो कि हम ऐसे सिद्धान्त को मानें जिसे बहुत से लोग मानते हों—जिसे बहुत से लोग पसन्द करते हों। इसका तो पता लगाना असम्भव ही नहीं किन्तु मूर्खता भी है। यदि तुम अपनी तथा दूसरों की भलाई चाहते हो—यदि तुम सबको प्रसन्न करना चाहते हो तो सत्य की खोज करो। सत्य

का पता लगाओ और सत्य को ग्रहण करो। सत्य के ग्रहण से चाहे वर्त्तमान समय में लोग तुमसे अप्रसन्न हों पर याद रखना कि भविष्य की सारी जनता भविष्य की सारी सन्तान तुमारी है। भगवान् बुद्धके सिद्धान्तों में जो सत्यांश है, ईसा की शिक्षा में जितनी सत्यता है और मुहम्मद के उपदेशों के भीतर जितनी सच्चाई है, उसका लोप कदापि नहीं हो सकता। हाँ, इन सिद्धान्तों में से भ्रमपूर्ण असत्य भागका नाश अवश्य होगा। बिश्वास रक्खो कि बदली सूर्य्य को सर्बदा के लिये नहीं ढाक सकती, असत्य सत्य को बहुत दिनोंतक नहीं दबा सकता। "अतः सत्य क्या है" इसका पता लगाओ—इसकी खोज करो। असत्यमें प्रतिष्ठा पाकर जीनेसे सत्यके लिये अप्रतिष्ठित होकर मर जाना भी श्रेष्ठ है।

* * * *

मज़हबी रोग।
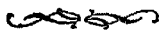
मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह जिस मजहब और मतको मानता है उसका यह बिश्वास हो जाता है कि किसी समय सारा संसार इसी मजहब का अनुयायी हो जायगा। यह भी एक प्रकार की मूर्खता है। संसार में न कभी एकमत वा मजहब था न अब है और न आगे कभी होगा। पर मजहबी लोग अपने मजहब के अनुसार अपना जीवन सुधारने में अपना समय न लगाकर दूसरे मजहब वालोंसे झगड़ा करने में अपना समय बिताते हैं। ऐसे लोग दूसरे मतवालों से अनेक प्रकार का बाद बिवाद कर उनसे अपना

मत मनवाना चाहते हैं। जब उनका मत कोई नहीं मानता तो वे बहुत ही दुःखी और चिन्तित होते हैं। बहुत से लोग तो अपना मजहब स्वीकार कराने के वास्ते अन्य मतवालों का प्राण तक लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। अपना मत मनाने के लिए छल और कपट से भी काम लेते हैं। ऐसे मतवादियों और मजहबी लोगों को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। ऐसे लोगों के लिए मजहब और मत भी एक रोग है। जितना समय तुम व्यर्थ के विवाद और बहस में बिताते हो उसका आधा भी यदि आत्मचिन्तन और आत्मसुधार में लगा दो तो बड़ा काम हो जाय। जितने लोग दूसरों को सुधारने के लिए व्याख्यान और उपदेश दे रहे हैं वे यदि स्वयम् सुधर जायँ तो संसार का एक भाग उसी समय सुधर जाय। अतः मजहबी विवाद को छोड़कर आत्म चिन्तन में लग जाओ तभी आत्मा को शान्ति मिल सकती है।

प्रेम का रहस्य।

लोग कहते हैं कि जब हम अमुक मनुष्यको देखते हैं तो हमारी शान्ति भङ्ग हो जाती है-हमारे हृदय में आग लगजाती है—हमारा खून उबलने लगता है—छटाँक खून जल जाता है। पर वही मनुष्य जब अपने प्रियको देखता है पानी पानी हो जाता है—गद् गद् हो जाता है—शीतल हो जाता और खून बढ़ जाता है। प्रेम की अद्भुत महिमा है प्रेममें शीतल करने की शक्ति और

विरोध में जलाने की ताक़त है। एक विरोधी मनुष्य यदि किसी सभा या गाँव में चला जाय तो सभा या गाँव में आग लगा दे। ठीक इसी तरह एक प्रेमी मनुष्य यदि किसी गाँव में चला जाय किसी सभा में चला जाय—तो सबको शीतल कर दे। वहाँ अमृत की वर्षा होने लगे।

*   *   *   *

इसकी परीक्षा हो चुकी है और इच्छा हो तो आप भी ले सकते हैं। यदि दो मनुष्य अपने पूर्ण क्रोध से लड़ रहे हों उस समय यदि उन दोनों के मुँह का थूक लिया जाय तो उस में विष पाया जायगा। बिल्लियों और कुत्तों को खिलाकर देखा गया वे मर गये हैं। इसी तरह यदि दो प्रेमी और प्रिय परस्पर मिल रहे हों तो उनका थूक अमृतमय होगा। प्रायः ऐसे थूक जब जब (एक विशेष युक्तिसे) पागल कुत्तों को दिये गये तो वे सब के सब अच्छे हो गये। प्रेमियों का जूठा फल लोग क्यों खाते हैं? साधुओंका जूठा प्रसाद खाने से बड़े बड़े असाध्य रोग क्यों छूट गये? इसका कारण यही है कि साधु उसी मनुष्यको कहते हैं कि जिसका रोम रोम ईश्वर के प्रेम से भरा हो। और इसके कारण उसके मुँह में अमृतका निवास हो। प्रेमी मनुष्य तो धन्य है ही पर वह मनुष्य भी संसार में धन्य है जिसे किसी सच्चे प्रेमी का दर्शन हो जाय। प्रेमियोंके दर्शनसे हृदय में वही आनन्द होगा जो भगवानके दर्शन से होता है। सच्चा प्रेमी साक्षात् भगवान है और उसका जूठा "अकालमृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम्" वाला महा प्रसाद है। पर आजकल बहुत से ऐसे नामधारी साधु भी हैं कि उनका जूठा

आप पर विष तुल्य प्रभाव डालेगा, इससे होशियार रहना चाहिए सच्चे प्रेमी का दर्शन करो, हृदय को शान्ति मिलेगी।

* * * *

प्रेम में इतनी शीतलता होती है-प्रेम खून के अणुओं को ऐसा बना देता है—कि यदि संयोग से उसमें विष भी प्रवेश करे तो वह पानी होजाता है। जैसे कालराके कीड़े खूनमें प्रवेश करते ही खून के अणुओं को पानी कर देते हैं, उसी तरह से प्रेमोन्मत्त खून के कीड़े रोग के अणुओं को निगल जाते और विष के प्रभाव को फीका कर देते हैं। थोड़ा सा विचार करने से यह बात समझ में आजायगी कि हम क्या कह रहे हैं। मीराबाई प्रेम की एक स्थूल मूर्त्तिथी। उसके रग रग में उसके खून के प्रत्येक परमाणुमें-प्रेमकी सत्ता भरी हुई थी। उसका जीवन प्रेममय हो रहा था। वह कृष्ण प्रेम में उन्मत्त थी। उसका श्वसुर इस प्रेम से बहुत ही असन्तुष्ट था, वह इसे जहर देकर मार डालना चाहता था। वह यह नहीं जानता था कि मीरा पर जहर का प्रभाव नहीं पड़ेगा, उसे प्रेम का भाव विदित न था। अन्त में उसने एक गिलास ऐसा तेज जहर घुलवा कर भेजवा दिया कि जिसे पीते ही मनुष्य मर जाय। जहर लेकर उसकी लड़की आयी थी। उसने जहर नवतलाने का निश्चय किया था। पर जब वह इस प्रेममयी मूर्त्ति के सामने आयी है (जिसके सामने शत्र भी आकर मित्र हो जाता है)वह प्रेम से गद्-गद् हो गयी। उसके शरीर में रोमाञ्च होगया। उसने आँसू बहाते हुए यह कह दिया-"भाभी इसमें जहर है"। पर मीरा को जीने वा वा मरने की परवा कहाँ ! उसे उस काले हलाहल में भी उसी श्याम सुन्दर श्री कृष्णचन्द्र गिरिधर गोपाल की मूर्त्ति झलकने लगी, जिसके अनन्य प्रेममें वह निमग्न रहा करती थी। सच्चा प्रेमी

सारे संसार में अपने प्रिय को देखने लगता है। वह जहर को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और उठा कर सब पी गयी। पर श्वसुर को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक घंटे बाद भी उसका प्राणान्त न हुआ। उसने एक गिलास जहर का फिर भेजा इसी तरह से चार चार गिलास जहर के दिये गये पर, उस प्रेममय शरीर में जाकर सब पानी हो गये—अपना प्रभाव न दिखा सके। इसे सच जानिए कि जिसका हृदय प्रेम से लपेटा हुआ और प्रेम में पगा है उसका जहर कुछ नहीं कर सकता। देवलोक का प्रसिद्ध अमृत यह प्रेम ही है।

* * * *

जैसे प्रिय को न मिलने से बुखार चढ़ जाता है, उसी तरह यदि ज्वर चढ़ा हो और कोई सच्चा मित्र मिलजाय तो बुखार उतर जायगा। एकाध चिकित्सक ऐसे डाक्टर हैं कि जो रोगी के साथ प्रेम से बातचीत करते हैं और उसका ज्वर उतर जाता है। हमने स्वयम् ऐसा किया है और हमारे कई एक मित्रों का बुखार हमारे साथ बात-चीत करने से उतर गया है। हम सत्य कहते हैं कि यदि कोई ऐसा मनुष्य हो कि उसका किसी के साथ विरोध न हो तो वह कभी बीमार ही नहीं पड़ सकता। अतः वह मनुष्य धन्य है जिसका किसी के साथ विरोध नहीं, किन्तु सर्वदा अपने प्रियतम के प्रेम में मस्त रहता हो।

* * * *

प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर प्रेम है। नास्तिक भी कहते हैं कि यह सृष्टि उत्पन्न होने के प्रथम परमाणु-रूप में, आकाश में बिखरी हुई थी, इसके जर्रे जर्रे अलग थे। इन्हीं बिखरे हुए परमाणुओंने, आपस में मिलकर सृष्टि या वर्त्तमान संसार को बना

दिया। पर नास्तिकों से यह पूछना चाहिए कि उन परमाणुओं में मिलने वा अलग होने का कुछ गुण था या नहीं ? यदि मिलने का गुण था तो अलग क्यों रहे, और यदि अलग होने का गुण था तो मिले क्यों ? यदि दोनों नहीं था तो वे क्यों किसी समय में मिलते और किसी समय में अलग होते हैं ? अतः इससे यही मालूम होता है कि उनमें स्वयं मिलने का वा अलग होने का गुण नहीं, किन्तु जैसे हम लोग ईंटों को इकट्ठा कर एक घर बना लेते हैं उसी तरह उसे भी किसी चेतन पुरुषने इकट्ठा कर संसार को बनाया। यह सोच कर नास्तिकों को मानना पड़ता है कि कोई ऐसी चेतन शक्ति अवश्य है जो परमाणुओं को मिलाती है। वही ईश्वर है अब यह देखना है कि वह कौनसी वस्तु है जिसमें मिलाने का गुण है ? यदि इस वस्तु का पता लग जाय तो ईश्वर का भी पता लग जाय। क्या आप नहीं जानते कि यदि चार भाई मिले हुए हैं इकट्ठे हैं तो क्यों ? प्रेम से। मिलने का गुण प्रेम में है। अतः प्रेम ही ईश्वर है। जबतक यह प्रेम रूपी ईश्वर संसार में व्यापक है—तबतक इस संसार की स्थिति है जिस रोज यह प्रेमरूपी ईश्वर संसार से निकल जायगा, उसी रोज ससार का प्रत्येक परमाणु अलग होने लगेगा और संसार का नाश हो जायगा। क्योंकि परमाणुओं के मेल वा प्रेम से ही संसार की उत्पत्ति हुई है। संसार के परमाणुओं वा संसार की स्थिति ईश्वर के कारण है। जिस समय ईश्वर की सत्ता निकल जायगी इसके परमाणुओं का भी पता न लगेगा। किसी जाति किसी देश वा किसी वस्तु का जब बनने के दिन आते हैं तो उनमें प्रेम होता है, इसी तरह जब बिगड़ने का समय होता है तो उसमें विरोध फैल जाता है-यही नियम है। शरीर में जब तक जीवनी शक्ति होती है

शरीर सुगठित और दृढ होता है पर जब इस में से जीवनी शक्ति निकलने लगती है तो वह बीमार पड़ता और फूल जाता है। मृत्यु निकट आने पर शरीर का प्रत्येक परमाणु एक दूसरे से पृथक होने का यत्न करता है। फूलने का यही कारण है। मौत के समय शरीर और प्राण जीवात्मा और शरीर, तथा अग्नि, जल और वायु सभी परस्पर अलग होने का यत्न करते हैं। विचार कर देखिये विरोध और मृत्यु एक पदार्थ हैं। विरोध में शान्ति नहीं है।

* * * *

तात्पर्य्य कहने का यह है कि, यदि तुम शान्ति चाहते हो—यदि तुम यह चाहते हो कि संसार तुम्हारे लिए सुख मय हो जाय—यदि तुम अपने जीवन को अमृतमय और नीरोग बनाना चाहते हो तो किसीके साथ विरोध मत करो। सब से प्रेम से मिलो, प्रेम से बातचीत करो, और सर्वदा प्रेममय रहो। किसी को छोटो जातिका न समझो। वास्तव में कोई विशेष जाति छोटी वा नीच नहीं है। प्रेम या ईश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं। हृदय में प्रेम को स्थान दो। जाति पाँति का झगड़ा ऊँच नीच का अभिमान आप से आप निकल जायगा। यह निश्चय जानो, जब तक तुम्हारे हृदय में प्रेम की धारा न बहेगी, तुम प्रेम पूर्ण न हो जाओगे तब तक हृदय में शान्ति और ब्रह्म ज्ञानका उदय न होगा। ब्रह्मज्ञान को केवल पढ़ लेने से कुछ नहीं होता। उसको यथावत या तत्व से समझना दूसरी बात है। जब तुम ब्रह्मज्ञान को यथावत समझ जाओगे, उस समय मालूम होगा कि हमारी पहली समझ से अब कितना भेद है। उस समय तुम्हारे ध्यान में आ जावेगा कि पढ़कर भी, हम ब्रह्मज्ञान से कोसों दूर थे। जब तक तुम्हारे हृदय में ऊँच

और नीच का भाव है--जब तक तुम्हारे हृदय में शान्ति के पहाड़ से प्रेमकी पतितपावनी गंगा न बही--कैसे माना जा सकता है कि तुम्हारे अन्तःकरण में ब्रह्मज्ञान उदय हो गया? कभी नहीं। सच्ची बात तो यह है कि ब्रह्म ब्रह्मज्ञान और प्रेम ये तीनों एक हैं।

हमारी आत्मा ही ब्रह्म है।

१--यद्यपि ईश्वर अदृश्य है--यद्यपि उसे किसी ने अपनी आँखो से आजतक नहीं देखा-पर उस पर इतने लोगों का विश्वास है, इतने लोगों की श्रद्धा है कि इतनी श्रद्धा और विश्वास देखे हुए प्रत्यक्ष पदार्थों में नहीं पाया जाता, प्रत्यक्ष पदार्थों में मतभेद है पर उस अप्रत्यक्ष अदृश्य और अचिन्त्य ईश्वर के सभी मजहब वाले मानते हैं। नास्तिक भी यद्यपि ईश्वर को न होने पर विवाद करते हैं पर कभी कभी उनका शुष्क हृदय भी डावाँडोल हो जाता है जिस समय वे चारपाई पर सोते हैं--जिस समय उनका चित्त एकाग्र होकर रात्रि के समय आकाश मंडल की ओर जाता है--उस समय बड़े बड़े नास्तिक भी हृदय में कह देते हैं कि--"ईश्वर हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं।" ईश्वर के विषय में सबकी ऐसी स्वभाविक गति क्यों है? इतनी श्रद्धा और विश्वास क्यों है? ऐसा अकारण प्रेम ऐसी अकारण श्रद्धा सिवाय अपनी आत्मा के दूसरे पर नहीं देखी जाती। अतः पूर्वोक्त बातों से यही प्रकट होता है कि वह परमात्मा हमारी आत्मा से कदापि पृथक नहीं, वास्तव में वह ईश्वर हमारी आत्मा ही है। यद्यपि इसका ज्ञान होना बहुत कठिन है पर विचार करो और बारम्बार इसका मनन करो। यदि तुम अपनी आत्मा का सच्चा स्वरूप पहिचान लोगे तो तुम्हारा जीवन आनन्द मय हो जायगा।

* * * *

२—संसार में केवल पृथ्वी ही गोल नहीं है, किन्तु संसार का प्रत्येक व्यहार प्रत्येक कार्य्य गोल है, पृथ्वी के गोल होने में यह प्रमाण दिया जाता है कि यदि हम किसी एक स्थान से रवाना होकर बराबर एक ही दिशा की ओर चले जाँय तो फिर वहीं आ जायँगे जहाँ से रवाना हुए थे। यदि पृथ्वी गोल न होती तो ऐसा कदापि न होता। ठीक यही दशा संसार के और कार्य्यों और व्यवहारों की भी प्रत्यक्ष देखी जाती है। जो अपनी ओरसे संसार के चारों ओर प्रेम छोड़ता है—प्रेम की वर्षा करता है—उसकी ओर भी चारो तरफ से प्रेमकी वृष्टि होती है। प्रेम द्वेप या सद्भाव जहाँ से जितना रवाना होता है यहाँ पर उतना ही फिर लौट आता है, संसार का यही नियम है।

* * * *

नीचे समुद्र से भाफ उठती है और ऊपर आकाश में जाकर बादलका रूप धारण करती है। फिर यही वस्तु बूँदों का रूप धारण कर हिमालय पर्वत पर गिरती और अधिक सर्दी पाकर पत्थर के समान जम जाती और बर्फ कहलाती है। देखिये फिर वही बर्फरूपधारी समुद्र का जल गल गल कर हिमालय से नीचे उतरता और गंगा नाम धारण कर भारतवासियों को पवित्र करता हुआ अपने पूर्व स्थान समुद्र को चला जाता है। ख़याल कीजिए इसका भी एक गोल चक्र है। संसार का प्रत्येक पदार्थ जहाँ से उठता है फिर वहीं आकर बिश्राम लेता है।

* * * *

नीचे पृथ्वी पर पड़ा हुआ बीज अँकुरका रूप धारण कर ऊपर उठता और एक बड़ा बृक्ष हो जाता है। शाखें निकलती हैं,

पत्ते लगने लगते हैं, फलता और फूलता है, पर अन्त में जो होता है वह किसी से छिपा नहीं है। फिर उस फलमें वही नीचे का बीज अपना पहला रूप धारण कर—बीज होकर—उसी पृथ्वी पर गिर पड़ता है जहाँ से रवाना हुआ था। इसीसे इस संसार का नाम संसारचक्र है। इसका प्रत्येक व्यवहार चक्रवत गोल है।

* * * *

संसार के सारे पदार्थ अपने अपने चक्र में पड़े हुए अपने लक्ष्य स्थान की ओर बहे चले जाते हैं। यह स्वाभाविकी गति—यह प्राकृतिक प्रवाह—संसार के प्रत्येक व्यवहार प्रत्येक कार्य्य, प्रत्येक वस्तु, और प्रत्येक तत्व में पाया जाता है। जहाँ देखिए वहीं इस प्रवाह में पड़ी हुई संसारकी प्रत्येक वस्तु भागती हुई—दौड़ती हुई और बहती हुई दृष्टि गोचर होगी। वृक्ष बढ़ता हुआ बीज की ओर जा रहा है—नदियाँ बहती हुई समुद्र की ओर जा रही हैं—सारा संसार जहाँ से आया है उन्नति करता हुआ वहीं जा रहा है।

* * * *

अब विचारणीय विषय यह है कि यह जीवात्मा किधर से आया और उन्नति करता हुआ किधरको जा रहा है—इसका स्वाभाविक प्रवाह किधर को है? जैसा कि हम इसके पहले कह चुके हैं, विचार करने से इसका स्वाभाविक प्रवाह ईश्वर की ओर मालूम होता है। यह जीवात्मा ईश्वर हीसे आया-ईश्वर हीसे उत्पन्न हुआ और क्रमशः वृक्ष, पशु, तथा पक्ष्यादि योनियों से उन्नति करता हुआ देव योनिको तय करके उसी ईश्वर को प्राप्त होगा जहाँ से यह गिरा है। आध्यात्मिक विचार आते ही तुम इसे अच्छी तरह समझ जाओगे कि जीवात्मा की धारा बराबर ईश्वर की ओर

उन्नति करती हुई क्रम क्रम से बढ़ती चली जा रही है, कहीं रुक नहीं सकती।

* * * *

अब देखना यह है कि यह धारा क्या चीज है? यह धारा वही है, जिससे यह उत्पन्न हुई है। जहाँ से यह आ रही है, यह दूसरी वस्तु नहीं है। समुद्र से उठी हुई भाफ बादल बूँदी, बर्फ और नदी सब जल ही है और अन्त में जल रूप समुद्र में ही मिलेंगे। ठीक इसी तरह यदि जीवात्मा ईश्वर ही से आया है और अन्त को ईश्वरी ही में मिलेगा तो अब भी ईश्वर ही है, दूसरा नहीं। अतः हम कहते हैं यदि तुम्हें सच्चे आनन्द को प्राप्त करना है, तो अपने सच्चे स्वरूप का स्मरण करो—जिसे अपने स्वरूप ही का ज्ञान नहीं उसे आनन्द और शान्ति कभी मिल नहीं सकती। आत्मज्ञान ही आनन्द का समुद्र और शान्ति का सच्चा स्थान है।

* * * *

एक विजातीय वस्तु दूसरी विजातीय वस्तुको नहीं खींच सकती। आकर्षण शक्ति केवल जातीय पदार्थों में काम करती है, विजातीय में नहीं। गँजेड़ी के पास गँजेड़ी, शराबी के पास शराबी. जुआड़ी के पास जुआड़ी, आप से आप आकर्षण शक्ति के प्रभाव से इकट्ठे हो जाते हैं। पृथ्वी स्थूल है इसलिये वृक्ष से टूटा हुआ पृथ्वी की ओर खिच आता है, इसी तरह आकाश सूक्ष्म है, अतः अग्नि से छूटा हुआ सूक्ष्म धूम (भाफ वा धूँआँ) सूक्ष्म आकाश की ओर आप से आप खिच जाता है। नदियाँ समुद्र की ओर क्यों खिच जाती हैं क्योंकि उनका जातीय समुद्र उनको खींच रहा है। जहाँ देखिए वहीं एक जातीय पदार्थ दूसरे पदार्थ

को खींच रहे हैं। इस संसार में यदि विचार कर देखिये तो जल के परमाणु जलको पृथ्वी के परमाणु पथ्वी को अग्नि के परमाणु अग्नि को और वायु के परमाणु वायु को बराबर अपनी ओर खींच रहे हैं यही जातीय खिंचावही—जातीय प्रेम, जातीयता, और स्वदेश प्रेमका कारण है। अतः यदि हम ईश्वर की ओर खिंचे जाते हैं—यदि वह हमें अपनी ओर खींच रहा है-तो अवश्य, हम वही वस्तु हैं—वही पदार्थ हैं—जो वह है। वह कोई दूसरी वस्तु वा कोई दूसरा पदार्थ नहीं। मैं वह हूँ और वह मैं। इस एकता का हृदय में मनन करो। बारम्बार चिन्तन करो एकता और अद्वैतका वास्तविक ज्ञान होते ही हृदय में शान्ति और आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ेगा।

* * * *

३—लोग कहते हैं कि उस आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द ईश्वर ज्ञान से मनुष्य भी आनन्दस्वरूप हो जाता है। यही कारण है कि बड़े बड़े योगी उसकी खोज में पड़े हुए हैं और हजारों महर्षि उसके ज्ञान से आनन्दित हो चुके हैं। पर विचार करने की बात यह है कि यदि वह आनन्द स्वरूप हमसे अलग है—हमसे पृथक् कोई दूसरा पदार्थ है—तो उसके ज्ञान से, उसके आनन्द स्वरूप होने के कारण, एक ऐसा पुरुष जो उससे भिन्न है—उससे पृथक है—आनन्द स्वरूप कैसे हो सकता है? आज एक महीने से हमें इस बात का ज्ञान है—हम इसे जानते हैं—कि रामदास के पास, करोड़ो रुपया है—पर इससे हमें क्या? उनके रुपयों का सुख हमें नहीं मिल सकता। किसी रोगीको यह मालूम हुआ कि हमारा पड़ोसी नीरोग है—इसके ज्ञान मात्र से वह रोगी सुखी नहीं हो सकता। हाँ ऐसे ज्ञान से एक अपूर्व आनन्द उस समय होता है

जब हमें यह मालूम हो जाय कि करोड़पती रामदास हमी हैं, हम भूले हुए थे हमीं रामदास हैं और वह रूपया हमारे ही पास गड़ा है। ठीक इसी तरह जब कोई सच्चा योगी उस आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द की खोज में चलता है—जिस समय वह उसका पता लगा लेता है—उसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है—वह देखता है कि वह आनन्द घन—वह आनन्दस्वरूप—वह सच्चिदानन्द हमी हैं। उस समय जो अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है उसका वर्णन वाणी द्वारा नहीं हो सकता, किन्तु वही जनता है जो उस आनन्द में मग्न हो जाता है। अतः यदि तुम सच्चा आनन्द चाहते हो—तो जैसे हो कुछ भी मान कर उस परमात्मा की खोज में लग जाओ, वही आनन्दका भंडार और सुखका खजाना है।

* * * *

४—दूसरे का सुख, ऐश्वर्य्य सामर्थ्य और बल देख कर दूसरे के हृदयमें ईर्षा उत्पन्न होती है, सुख नहीं। सच्चा सुख, उसी समय मिल सकता है जिस समय तुमसे बढ़कर या तुम्हारा बराबरी करनेवाला संसार में कोई न हो। जिस समय हम अपने से किसी को उच्च स्थान पर देखेंगे हमारे हृदय को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। मोक्ष होने पर भी यदि यह जीवात्मा परमात्मा में नहीं मिलता—एक नहीं हो जाता तो उसके ऐश्वर्य्य और सामर्थ्य को देखकर इसे आनन्द की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। उलटी ईर्षाग्नि में जलते रहेंगे। यदि वह हमसे भिन्न वस्तु है तो उसके ज्ञान से, उसके निकट जाने से, उसकी भक्ति से, हम कदापि सुखी नहीं हो सकते, अतः सच्चा मोक्ष है ईश्वर से अभिन्न हो जाना। यदि मोक्षकालमें हम परमात्मा से मिलते हैं—हम उसमें लीन होते हैं—तो अबभी हम वही हैं। क्योंकि एक शुद्ध पदार्थ में यदि

कोई दूसरा पदार्थ मिला दिया जाय, तो वह शुद्ध पदार्थ भी विकृत हो जायगा। पर ईश्वर नित्य शुद्ध और निर्विकार है, इसलिये यह जीवात्मा उससे भिन्न कोई अन्य पदार्थ नहीं—यह वही है. केवल कल्पना मात्र का भेद है। तुम इस समय भी मुक्त हो। वन्धन, केवल कल्पना मात्र का है, वास्तविक नहीं। इस कल्पना वा भेदाभेद को जो समझता है वही विद्वान और वही सुखी है। शान्ति उसी को मिल सकती है, जो परमात्मा, को अपने से अलग नहीं समझता।

* * * *

५—एक स्त्री जब अपने पतिपर दूसरी स्त्रीका प्रेम देखती है तब उसे वड़ा दुःख होता है। प्रेमी यही चाहता है कि हमारे प्रिय का दूसरे के साथ प्रेम न हो और उसके प्रेमी भी केवल हमीं हों। पर जिस ईश्वर का करोड़ों के साथ प्रेम है—जिसके करोड़ों प्रेमी संसार में वर्त्तमान हैं—यह जानते हुए भी लोगों का अनन्य प्रेम उसके साथ क्यों हो जाता है? जिसके असंख्य प्रेमी हैं उसके साथ हमारा प्रेम निरर्थक और मूर्खता है? असंख्य प्रेमियों के सामने हम किसमें हैं? इन सब बातों को जानते हुए भी उसके असंख्य सच्चे प्रेमी, और अनन्य सेवक हैं। अतः इसका कोई गुप्त कारण अवश्य है। क्या आप इसका कारण जानते हैं? इसका कारण यह है कि वह सबकी आत्मा और अद्वैत होनेसे सर्वप्रिय है। हजारों गोपियों का, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के साथ प्रेम क्यों था? हजारों गोपियाँ आनन्द से कृष्णके साथ नाचती थीं पर परस्पर ईर्षा और द्वेषका नाम भी नहीं था क्या कारण? कारण प्रकट है। ईर्षा तब होती है—द्वेष तब होता है-जब एकके साथ कृष्ण होते और दूसरे के साथ नहीं। एकके साथ नाचते और दूसरे के साथ नहीं। पर

भगवान् कृष्णचन्द्र सबकी आत्मा थे। सबके कृष्ण सबके साथ थे, जितनी गोपियाँ थीं उतने कृष्ण थे। सब ने प्रत्यक्ष देखा कि हमारे कृष्ण हम से लिपटे हुए हैं। वेदान्त का रहस्य जानना है तो कृष्ण की जीवनी पर—कृष्णके वाक्यों पर-ध्यान दो। यदि तुम्हें कृष्ण की कथा समझ में आजायगी तो तुम्हें एक अपूर्व आनन्द मिलेगा।

गुप्तसिद्धियाँ कैसे मिल सकती हैं।

१—प्रायः लोग कहते हैं कि प्राचीन लोगों में इस बात की बड़ी कमी थी कि वे अपनी जानी हुई अच्छी विद्याओं को गुप्त रखते और किसी को उसका उपदेश नहीं देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन लोग योग और वेदान्तादि विषयों को गुप्त रखते थे, पर वह इस लिए नहीं कि उसका ज्ञान किसी को न हो किन्तु इस लिए कि उसे अधिक लोग जानने का यत्न करें। क्योंकि जो वस्तु गुप्त रक्खी जाती है उसे जानने के लिए बहुत से लोग प्रयत्न करते हैं, प्रत्येक मनुष्य में यह गुण स्वाभाविक रीति से वर्त्तमान है। आप अपने नौकर को दस सन्दूक सौंप जाइए। एक सन्दूक के लिए बिशेष रीतिसे कह दीजिए कि चाहे औरों को खोलना पर इस काली सन्दूक को कभी मत खोलना। अब इसका प्रभाव यह पड़ेगा कि यदि वह सन्दूक खोलेगा—यदि उसे खोलने की इच्छा होगी तो उसी काली सन्दूक को जिसे आपने मना किया है। ईसाई लोग भी कहते हैं कि आदम ने वही फल खाया जिसे ईश्वर ने खानेके लिए मना किया था। मतलब कहने का यह है कि गुप्त विषयको जानने के लिए सर्व साधारण अधिक प्रयत्न

करते हैं, और जो जिस विषय के जानने का दृढ़ प्रयत्न करता है जिसे उसकी दृढ़ जिज्ञासा है-वही उस विषय के जानने का अधिकारी है। अधिकारी को सारी गुप्त विद्याएँ बतलायी जा सकती हैं यह सब आचार्य्यों का मत है। अनधिकारी को—उस मनुष्य को जो उसे जानने के लिए प्रयत्न और श्रद्धा नहीं दिखलाता—उसे उपदेश देना वा किसी वस्तु को बतलाना व्यर्थ होता है। क्योंकि ऐसा मनुष्य या तो ऐसे उपदेशों को ग्रहण ही नहीं करता या उससे वह ऐसा काम लेता है जिसके लिए वह वस्तु नहीं बनायी गयी। जैसे, कोई अच्छी पुस्तक किसी बनिये के हाथ में जाय वह उसे फाड़कर अपना सौदा बाँधने के काम में लावे। ऐसे लोग वेदान्तादि ज्ञान का लाभ कर इधर उधर विवाद करते फिरते हैं। कुछ तो उसके पक्षमें विवाद करते हैं और कुछ विरुद्ध। पर ब्रह्मज्ञान से केवल विवाद ही का काम लेते हैं और कुछ नहीं। ब्रह्मज्ञान केवल विवाद के लिए नहीं है पर अनधिकारी उसे प्राप्त कर दूसरा क्या कर सकता है? अतः प्राचीन लोग जो ब्रह्मज्ञान और योग को गुप्त रखते थे वह अनुचित नहीं था।

* * * *

२ अब हम अपना विचार "गुप्त सिद्धियों" पर प्रकट करना चाहते हैं जो योग और वेदान्त से सम्बन्ध रखती हैं और जो प्राचीन कालमें बहुत ही गुप्त रक्खी जाती थीं। पर अब वह समय आ गया है कि वे गुप्त विद्याएँ अब उस तौर पर गुप्त नहीं रक्खी जा सकतीं, हाँ, गुप्त न रहने पर भी इससे लाभ वही उठा सकेंगे जो इसके जानने के अधिकारी हैं, दूसरे नहीं।

* * * *

३—सांसारिक मनुष्यों में अधिकतर ऐसे हैं कि यदि उन्हें यह

मालूम हो जाय कि आज से एक महीने के बाद अमुक तिथि को हमारी मृत्यु निश्चय हो जायगी, तो वे उसी रोज से मृतक के समान हो जायँगे-वे जीतेही मुर्दों के समान निश्चेष्ट और निष्क्रिय हो जायँगे—मृत्यु का भविष्य जान लेनेसे जीवन व्यर्थ हो जायगा यही कारण है कि जब आत्मा संसार में चली स्वयम् उसने ऐसा प्रबन्ध कर लिया है—कालज्ञान के आगे या अपने भविष्यत् के सामने ऐसा पर्दा डाल लिया है—कि जिसमें अपने भविष्यत् और मृत्यु का ज्ञान उसे न हो । आत्मा को मालूम था कि सांसारिक होने पर यदि हमें अपनी मृत्यु और भविष्यत् का ज्ञान रहेगा तो हमारा जीवन व्यर्थ हो जायगा ।

* * * *

४—पर योगियों को अपनी मृत्यु और काल का ज्ञान हो जाता है। यह एक सिद्धि है जिसे कालज्ञान की सिद्धि कहते हैं। यह सिद्धि उस मनुष्य को प्राप्त होती है जिसे जीने की इच्छा बिल्कुल नहीं रह जाती—जो जीवन और मरण को तुल्य समझता है—जो "मृत्यु" को पुराने कपड़े को छोड़ नवीन कपड़ा पहनना वा प्राचीन जीवन को छोड़ एक नवीन जीवन में जाना, समझता है। जब योगी का पूर्वोक्त ज्ञान दृढ़ हो जाता है जब उसके हृदय में पूरा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब उसके अन्तः करण के सामने से एक ऐसा पर्दा हट जाता है कि उसे अपनी तथा दूसरों की भी मृत्यु का ज्ञान स्पष्ट होने लगता है।' यही एक साधन है जिससे मनुष्य को मृत्यु का ज्ञान प्रत्यक्ष हो सकता है ।

५—"अमुक कार्य्य में लाभ होगा या हानि, इस समय जो मुकद्दमा हमारे ऊपर चल रहा है उसमें जीत होगी या हार अथवा वह चीज जिसको हम बहुत चाहते हैं मिलेगी वा नहीं"—इन

सब बातोंका उत्तर एक साधारण मनुष्य भी "भविष्यद्ज्ञान की सिद्धि" प्राप्त कर स्पष्ट दे सकता है। क्योंकि इस सिद्धि का प्राप्त कर लेना कोई कठिन कार्य्य नहीं। हाँ, उसकी युक्ति न जानने से सभी बातें कठिन मालूम होती हैं। पर हम अपना जन्म इसी लिये समझते हैं कि गुप्त से गुप्त बातों को भी प्रकट करें और लोगों को बतला दें। इस संसार में जितने मनुष्य हैं सभी लाभ विजय और यश चाहते हैं। उस लाभकी इच्छा ने ही भविष्यद्ज्ञान के सामने पर्दा डाल दिया है जिससे भविष्यद् का सच्चा ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। "हमारी जीत होगी या हार"—यह प्रश्न उदय होने पर सबकी आत्मा सच्चा उत्तर दे देती है, पर स्वार्थ, जीत वा लाभकी कामना ऐसी प्रबल होती है जो हमारी आत्मा का सच्चा और निष्पक्ष उत्तर हृदय को सुनने नहीं देती। हृदय के भीतर स्वार्थ इतने जोर का शोर मचाता रहता है कि उसमें सत्यज्ञान की धीमी आवाज सुनने में नहीं आती। यदि हम लाभ और हानिमें समबुद्धि रक्खें—यदि हम सुख और दुःखको बराबर समझें—यदि हमारे हृदयसे स्वार्थ की कामना निकल जाय—यदि हम सबको आत्मवत् देखें—तो वह पर्दा जो सत्यज्ञान वा भविष्यद्ज्ञान के सामने पड़ रहा है ऐसा क्षीण हो जायगा कि होनहार की सब बातें हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष होने लगेंगी—भविष्य की सारी बातें हृदय की आँखों के सामने आजायँगी। जब मनुष्य लाभ हानि में सम होता है—जब उसके हृदय से स्वार्थ निकल जाता है उस समय वह संसार के सारे मनुष्यों को आत्मवत् देखता है, भेदभाव नहीं रहता ऐसे योगियों को केवल अपने ही भविष्यत् का ज्ञान नहीं होता किन्तु वह प्रश्न करनेपर सबका भविष्यत् बतला सकता है। ऐसेही योगियों को लोग भविष्यद्वक्ता (Probhet) कहते हैं।

६—जो मनुष्य, सर्वदा सत्य बोलता है—जिसने सत्य बोलने का इतना अभ्यास कर लिया है कि भूलकर भी उसके मुख से असत्य नहीं निकलता—जिसकी जिह्वा स्वभावतः सर्वदा सत्य ही बोलती है—उसके मुख से जो वचन निकलेगा वह जिसे वर वा शाप देगा—वह सर्वदा सत्य होगा इसी सिद्धि को' वाक्सिद्धि' कहते हैं।

* * * *

७—सन्तोष धारण करने, चिन्ता रहित रहने, और वीर्य्य की रक्षा करने से योगी सुन्दर और बलवान् होता है। इसी तरह आलस्यरहित होने और परिश्रम करने से शरीर बलवान् और सुडौल होता है।

* * * *

८—ध्यानयोग द्वारा समाधि तक पहुँचने से अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होता है और वह यह समझ जाता कि ब्रह्म कौन और कहाँ है। बिना इसके केवल पुस्तकों द्वारा वास्तविक और दृढ़ ज्ञान नहीं होता। बिना समाधि के पुस्तक लिखित "ब्रह्मज्ञान" प्रायः तत्व से नहीं समझा जाता उसकी बुद्धि केवल ऊपर ही ऊपर फिसला करती है।

* * * *

९—अहिंसाके पालन से—किसी को दुःख न देने से—सबके साथ साधारण प्रेम रखने से—योगी सबका मित्र बन जाता है। इस सिद्धि को "वैर त्याग सिद्धि" कहते हैं। ऐसे योगियों के पास आकर परस्पर शत्रु स्वभाव वाले पशु (जैसे, चूहा बिल्ली एवम् सिंह और गौ इत्यादि) भी परस्पर मित्र बन जाते हैं।

* * * *

आदर्श जीवन।

१—पुस्तक पढ़ना तो अवश्य अच्छा है पर पुस्तक पढ़ने की "धुन" अच्छी नहीं। पुस्तक लिखनेवाला यदि किसी पुस्तक को लिखता है तो इसी उद्देश्य से कि लोग इससे अपना जीवन सुधार सकें—अपने कुत्सित स्वभावको अभ्यास करके बदल सकें। अतः यदि पुस्तक पढ़ने में एक घण्टा लगा तो उसके अनुसार अपना स्वभाव बनाने में महीना दो महीना वर्ष दो वर्ष लग सकता है, सो भी उसके साधन में जब नित्य कठिन परिश्रम किया जाय तब, अन्यथा जन्मभर में भी बुरे स्वभाव नहीं बदल सकते। पर सांसारिक लोगों की विचित्र गति है। या तो वे पुस्तक पढ़ते ही नहीं या पढ़ने लगे तो पुस्तकों के पढ़ने ही में इतना समय लगा देते हैं कि उन्हें उसपर विचार करने वा उसके अनुसार साधन करके अपना जीवन सुधारने का समय ही नहीं मिलता। यही दशा अधिकतर पुस्तक लिखनेवालों और व्याख्यानदाताओं की भी है। ऐसे लोग एक तो होते ही बहुत कम, हैं कदाचित हुए भी, तो उनसे इतनी पुस्तकें लिखवायी और इतने विषयों पर व्याख्यान दिलवाया जाता है (या वे स्वयम् इतना लिखते वा दूसरों को शिक्षा देते हैं) कि उन्हें स्वयम् उन शिक्षाओं के अनुसार अपना स्वभाव सुधारने वा बनाने का समय ही नहीं मिलता। ऐसा लिखना, पढ़ना, या उपदेश एक प्रकार का रोग है। अतः तुम स्वयम् सोचो, यदि इनमें से कोई रोग तुम्हारे अन्तःकरण के भीतर आ गया है तो उसे निकालने का यत्न करो, बिना इस रोग से मुक्त हुए तुम्हें शान्ति वा आनन्द का मिलना तो दूर रहे उसकी झलक भी दिखलाई न देगी। अतः किसी अच्छी पुस्तक को चुन लो और प्रातःकाल उठकर थोड़ा सा नित्य पाठ करो, साथ ही मन

में यह भी प्रतिज्ञा करो कि आज से जहाँतक हो सकेगा इसी के अनुसार चलेंगे।

* * * *

जिन कर्मों के करने से, मनमें, पछतावा उत्पन्न हो—जो पीछेसे शान्तिको भंग करें—जिनमें सुख हो नाम मात्रका पर परिणाम में दुःख ही हो ऐसे कर्म तभी होते हैं जिस समय मन अपने वश में नहीं रहता। जिसके जीवन में ऐसे कर्म जितने ही अधिक हों समझ लो कि उस मनुष्यका "मन" उतना ही चञ्चल है। क्योंकि ऐसे कर्मोंमें गिरना आत्मा कभी नहीं चाहता, किन्तु यह निरंकुश मन ही उसमें गिरा देता है। अतः किसी विशेष समय पर एकाध घण्टे के लिए चित्तके रोकने को ही केवल योग नहीं कहते, किन्तु हर वक्त मन पर ऐसी दृष्टि रक्खे कि वह आत्मा से अपनी वाली न करा सके—यह सर्वोत्तम योग है। इस साधन से मनुष्य मन का दास नहीं बनता किन्तु मन ही उसका गुलाम बन जाता है। बस, यह बात निश्चित् है कि जो हृदय में शान्ति चाहता है वह ऐसा साधन करे कि मनकी लगाम उसके हाथ में आ जाय। वह मनुष्य धन्य है जो मनका स्वामी है और मन उसकी आज्ञा का पालन करता है।

* * * *

सचमुच, यदि तुम शान्ति और सुख चाहते हो तो संसार को लीला, और अपने को एक उसका दर्शक समझो। इस दृष्टि से दुःख भी सुखरूप हो जाता है। युद्ध का समाचार और युद्धका दृश्य तमाशा देखनेवालों को बहुत अच्छा मालूम होता है, पर उसका कष्ट लड़नेवाले ही जानते हैं। रास्ता भूल जाने से एक आश्रयहीना अबला एक घोर बन में आ पड़ी। दिन भर चलने पर

भी मार्ग न मिला । अन्त में थककर उसी जंगल में एक नदी के किनारे एक पत्थर की शिलापर बैठ गयी । सूर्य्य अस्त हो रहा था—स्त्री घोर चिन्ता में निमग्न थी, इसी भावका एक चित्र है । इसे जो देखता है बहुत ही प्रसन्न होता है, कहता है कि—यह चित्र बहुत अच्छा है । देखनेवालों के लिये बहुत अच्छा है—उनका मन बहलाव है—पर उस दीना स्त्री की क्या दशा होगी ! उसे कैसा दुःख होता होगा ! क्या आप अनुमान नहीं कर सकते ? पर इससे क्या ? दर्शकों के लिए यह एक तमाशा है । कहने का मतलब यह है कि तमाशा की दृष्टि से दुःख भी सुखदायी हो जाता है अतः वेदान्त की यह आज्ञा है कि तुम इस सारे संसारको लीलामय समझो । तुम दर्शक बनो और संसार तुम्हारे लिए तमाशा बन जाय, बस, आनन्द ही आनन्द है । प्रसन्न चित्तसे प्रवाह पतित जो दृश्य सामने आवे उसे आसक्ति रहित होकर—तमाशा समझ कर—देखते जाओ और लाभ हानि में एक रस रहो ।

* * * *

खेल की महिमा ।

जो कुछ तुम्हें करना है खेल समझकर करो । कोई काम खेल समझ कर करने से न श्रम ही मालूम होता है न उत्साह ही भंग होता है । काम को काम समझ कर करने से—विवस होकर करने से—परतन्त्रता में करने से—मनुष्य अति शीघ्र थक जाता है । पर खेल के कार्य्य में—स्वतन्त्रता में मनुष्य कठिन से कठिन परिश्रम करके भी नहीं थकता । मास्टर के खड़ा कराने पर जो लड़के एक घंटे में थक जाते हैं, वही खेल और तमाशे में आठ आठ घंटे खड़े

देखे गये पर थके नहीं जितने उत्साह के साथ लोग खेल में कठिन से कठिन परिश्रम कर डालते हैं उतने उत्साह के साथ उतने परिश्रम का काम कभी नहीं हो सकता। राम ने त्रेता में जो कठिन कार्य्य किया है वह भी खेल ही समझ कर। इसीसे इन लोगों का कार्य्य भी, "कार्य्य" नहीं कहलाता किन्तु "लीला" कहलाती है। "रामलीला" और "कृष्ण लीला" अब तक प्रसिद्ध है। ईश्वरने भी इस संसार को लीला समझ कर बनाया है। वेदान्त—दर्शन में व्यासजी भी कहते हैं—"लोकवत्तुलीला कैवल्यम्।" अतः यदि तुम्हें सच्चिदानन्द स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप होना है, तो तुम भी संसार को लीला मात्र समझो। ऐसा समझने से इस सिद्धान्त को भली प्रकार समझ कर इस पर आरूढ़ होने से तुम पुण्य वा पापः से लिप्त न होगे। जिस समय तुम वास्तव में इस संसारको खेल समझोगे तुम्हारे हृदय से मानापमान, ईर्षा द्वेष और मदमात्सर्य्य सर्वथा नष्ट हो जायगा। तुम्हारा हृदय आनन्द पूर्ण होगा, मुखपर प्रसन्नता रहेगी और अन्तः करण एक छोटे बच्चे के समान ऐसा स्वच्छ हो जायगा जिसपर सांसारिक हवा अपना प्रभाव न डाल सकेगी।

* * * *

हमने यहाँपर जिस खेल का माहात्म्य कहा है वह खेल ही का महात्म्य है, जूए का नहीं। जिस खेल में बाजी लगाई जाय-जिस खेल की हार—जीत के साथ लाभ और हानि मिली हो—वह खेल 'खेल' नहीं है, किन्तु जूआ है। स्मरण रक्खो जूए का खेल सर्वदा दुःखदायी होता है—वह विष के समान त्यागने योग्य है। खेल वही है जिसकी हार जीत भी खेलही हो न कि उसका सम्बन्ध किसी सांसारिक धन दौलत वा मानापमान से रक्खा जाय।

आनन्द का पता।

जहाँ बहुत से लोग जाने लगते हैं वहाँ वे मतलब भी जाने की इच्छा होती है। मन यह जानता है कि वहाँ जाने से कुछ विशेष आनन्द मिलेगा। सबको जाते हुए देखकर मन कहता है कि ये सब लोग मूर्ख नहीं हैं अवश्य यहाँ पर आनंद है। तुम भी चलो—चलो अवश्य चलो। वहाँ पर शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा, तापत्रय से जला हुआ हृदय ठंढा होगा। यद्यपि कई बार इस इच्छा से कई जगह गये पर पीछे से पछताना ही पड़ा। पश्चात्ताप के सिवाय और कुछ हाथ न आया। जिस शान्ति और आनंद के लिए इतनी दूर गये—इतना कष्ट उठाया—इतना खर्च किया वह नहीं मिला। आशा भंग हो गयी, चित्त की दशा वैसी ही रही। चित्त ने कहा अब कहीं न जायँगे जाने से लाभ ही क्या? पर यह ज्ञानस्थायी नहीं होता। यह आत्मा सुख और आनन्द की इतनी भूखी है कि हर वक्त उसे खोजती फिरती है, क्योंकि वेदान्त का सिद्धान्त है कि किसी समय यह परमानन्द स्वरूप ब्रह्म था—आनन्द का समुद्र था। उसीको यहाँ भी खोजता है उसीके लिए इधर उधर—बाहर परिधि में—संसार चक्र के चारों तरफ-अज्ञान वश दौड़ता है। पर, हा! वहाँ आनन्द कहाँ! आनन्द तो केन्द्र में है—भीतर है—तुम्हारे पास है—तुम स्वयम् हो। लौट पड़ो—घूम आवो—अपने आप की ओर मुड़ जावो—दौड़ना छोड़ दो—चित्त को शान्ति मिलेगी।

* * * *

सत्य की दृढ़ता।

संसार में जितने अज्ञानी हैं उतने ज्ञानी नहीं हैं। अज्ञान की ओर अधिक भीड़ होती है जहाँ भीड़ होती वहाँ आप से आप मनुष्य टूट पड़ते हैं। वास्तव में जहाँ जाना चाहिए वहाँ बहुत कम लोग जाते हैं। जिस व्याख्यान में वा जिस पुस्तक में कुछ सार है उसे बहुत कम लोग सुनते और पढ़ते हैं। निस्सार उपन्यासों और मनोहर व्याख्यानों में बहुत चित्त लगता है। भीड़ की ओर खिचाव होता है, आप से आप लोग—देखें यहाँ क्या है,—यह कह इकट्ठे हो जाते हैं। प्रायः ऐसे स्थानोंपर बेमतलब की बातें निकलती हैं। जाकर अन्त में लज्जित होना पड़ता है। जिस मत के माननेवाले अधिक हैं—जिस सम्प्रदाय के अनुयायी करोड़ों हैं वह मत सत्य है—ऐसा मानना सर्वथा भूल है। सत्य की ओर, विज्ञान की ओर एवम् दार्शनिक गूढ़ तत्वों की ओर, सर्व साधारण का चित्त नहीं लगता। ऊपरी तड़क भड़क पर अधिक लोग मोहित हो जाते हैं चाहे भीतर शून्य ही क्यों न हो वहाँ बहुत से लोग जाते हैं, अतः हमें भी जाना चाहिए—यदि तुम्हारा ऐसा सिद्धान्त है तो भूले हुए हो। इस वृत्ति को—इस वासना को रोक दो। यदि तुम वहाँ नहीं गये तो जानो कि तुमने आज इन्द्रियों पर विजय लाभ किया। इसी तरह अभ्यास करते जाओ तुमारे लिये शान्ति का द्वार धीरे धीरे खुलता जायगा।

वहाँ जाने के लिये तुम्हें साथी नहीं मिलेंगे। सत्य के अनुयायी बहुत कम होते हैं। फजूल कामों में बहुत साथी मिलते हैं। गँजेड़ियों, भँगेड़ियों और शराबियों के कितने साथी होते हैं? क्या आपने नहीं देखा है? फिर साथ की चिन्ता क्यों है सत्य के

साथी बहुत कम मिलते हैं। किसी काम में हमारे दश पाँच साथी मिलेंगे तभी करेंगे—यह भूल है। साथ वाली प्रकृति अच्छी नहीं होती। बहुत से लोग विना साथ के पाखाने भी नहीं जाते—यह कितना अनुचित है? "घूमने के लिये तो साथी अवश्य चाहिये-" यह भी मूर्खता है। दस मनुष्यों के साथ घूमोगे तो तुम्हें स्वच्छ हवा न मिलेगी—तुम्हें किसी गूढ़ विषय के सोचने का समय न मिलेगा—व्यर्थ गप-शप में रास्ता कट जायगा। यथा शक्ति सवारी भी मत लो—किसी की सहायता भी मत माँगो—इससे तुम्हारी शक्ति बढ़ जायगी—तुम्हारा शरीर और आत्मा पुष्ट हो जायगा। अतः यदि तुम्हें सत्य का अनुयायी बनना है—सत्य की खोज करनी है तो अभी अपने कार्य्य में लगजाओ—साथी की खोज में मत रहो। जो तुम्हें करना है अकेले करो—द्वैत की भावना छोड़ दो। तुम अकेले आये हो—अकेले जाओगे—फिर बीच का साथ कैसा? स्मरण करो तुम वह अद्वैतरूप हो जहाँ द्वैत की गन्ध भी नहीं है। यह अद्वैत-पद ही शान्ति का स्थान है।

*　　*　　*　　*

अहंकार का रहस्य।

बहुत से लोग कहते हैं कि अहंकार का नाश करो—अहंकार को मिटा दो—इससे तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलेगी। पर लोग यह नहीं सोचते कि चेतना का अहंकार कैसे मिट सकता है? चेतन का सबसे बड़ा लक्षण उसमें अहंकार का होना ही है। जिस चेतन में अहम् का भाव नहीं है वह चेतन कैसे है? हमारे कलम में अहम् भाव नहीं है, दावात में नहीं है?, आसन में नहीं है, वस्त्र में नहीं है, क्योंकि ये जड़ हैं जड़ में अहंकार नहीं है। यदि उनमें

अहम् का ज्ञान ही होता तो जड़ क्यों कहलाते? अतः अहंकार को मिटा देने से मनुष्य भी कलम, दावात, आसन और वस्त्र के समान जड़ हो जायगा। जब उसकी आत्मा ही न रही—जब वही नहीं—तो शान्ति किसे मिलेगी? ऐसी शान्ति को धिक्कार है!

* * * *

अहंकार मिटानेसे मतलब वास्तविक अहंकार मिटाने से नहीं है। वास्तविक अहंकार—अपने स्वरूपका अहंकार-सुख दायी है, शान्तिदायी है और आनन्द का समुद्र है। जिस अहंकार में तुम मस्त हो रहे हो वह तुम्हारे स्वरूप का नहीं है—वह बाहरी है-वह स्वरूप के अज्ञान से वा अपने को न जानने से उत्पन्न हुआ है। यही अहंकार दुःखदायी है। यह जब मिट जाता है—जब इसका समूल नाश हो जाता है-ब्रह्मज्ञान रूपी सूर्य्य शान्ति और आनंद-रूपी प्रकाश के साथ हृदय में उदय होकर अशान्ति और दुःख रूपी अन्धकार को मिटा देता है।

हम बहुत बड़े जमींदार हैं। वह हमारे ही गांव का एक साधारण कृषक है। इसपर भी वह हमारे लगाये हुए जुर्माने को नहीं देता! हम इतने बड़े प्रतिष्ठित हैं पर उस दिन उस पण्डित ने उठ-कर हमें प्रणाम नहीं किया। हा! हमारे इस धनको कौन भोगेगा। हम कुलीन ब्राह्मण हैं पर ये लोग हमें कुछ नहीं समझते। अच्छा, इसका बदला लेना चाहिए जिसमें ये लोग भी समझ जायँ कि ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज कैसा होता है! वह कायस्थ होकर हमें गाली देता है। हम शूद्र हैं, हम भला क्या कर सकते हैं, हम तो सबकी सेवाही के लिये बनाये गये। हा! ईश्वर ने हमें शूद्र क्यों बनाया? इन्हीं भावों को—इन्हीं पूर्वोक्त विचारों को-असत्य अहंकार कहते हैं। यही अहंकार त्याज्य है। संसार में जितने पाप हो रहे हैं; बि-

चारने पर उनका कारण अहंकार ही मालूम होता। हमारे हृदय में जितने मानसिक क्लेश हैं-जितनी चिन्ताएँ हैं—सबका कारण अहंकार ही है। बिना पूर्वार्जित मानसिक विकार के शारीरिक क्लेश भी नहीं हो सकता। अतः शारीरिक क्लेशों का कारण भी अहंकार ही है हृदयकी अशान्ति और विक्षेप मिटाने केलिए इन्हीं अहंकारों का मिटाना आवश्यक है।

* * * *

हम इनके पिता हैं, इनके पुत्र हैं, इनके श्वसुर हैं, इनके दामाद हैं, इनके महाजन हैं, इनके मालिक हैं, इनके नौकर हैं--ये भाव तबतक हैं जबतक अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं है। यह अहं·कार त्याज्य है। तुम अकेले पिता, पुत्र, श्वसुर, दमाद, प्रजा और राजा सब कैसे हो सकते हो। तुम वस्तुतः इनमें से कुछ भी नहीं। तुम इन सबों से पृथक हो। इन सभोंका सम्बन्ध, शरीर के साथ है शरीरसे इनका सम्बन्ध माननेमें हानि नहीं। परतुमने इसको अपना सच्चा स्वरूप मान लिया है। ये सब तुमारे हो सकते हैं परतुमस्वयम् वह नहीं हो। टोपी तुम्हारी है। तुम स्वयम् टोपी नहीं हो। छड़ी तुम्हारी है। तुम स्वयम् छड़ी नहीं हो। आँख, कान, नाक, हाथ, पैर नहीं हो। शरीर तुम्हारा है, तुम स्वयम् शरीर नहीं हो। यही एक भारी गलती है, देखो, तुम्हारे अहंकार के सारे भाव शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, तुम अपने शरीर को ही आत्मा समझ रहे हो। यही अहंकार सारे अनर्थों का कारण है। इसीसे हृदय को शान्ति नहीं मिलती।

* * * *

महात्माओं का वचन है कि स्वरूप के ज्ञान से वा ब्रह्म के साक्षात्कार से अहंकार मिट जाता है। क्या तुम इसका कारण

जानते हो ? कारण बहुत स्पष्ट है। सम्राट को यदि कहीं एक गाँव की जमींदारी मिल जाय तो वह उसका अहंकार नहीं करेगा। इसी तरह जब मनुष्य अपने स्वभाव वा ब्रह्म का साक्षात्कार करता है तो अपने को ब्रह्मस्वरूप ही पाता है। इसी तरह जिसे अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो गया—जो अपने को ब्रह्म समझता है—वह शरीर और संसार के तुच्छ अधिकारों का अहंकार नहीं कर सकता। वह मनुष्य उस अवस्था को पहुँच जाता है कि जहाँ सांसारिक अहंकार विलीन हो जाते हैं। जैसे सूर्य्य के सामने तारे विलीन हो जाते हैं, उसी तरह "अहंब्रह्मास्मि" रूपी बड़े अहंकार के सामने सांसारिक तुच्छ अहंकार विलीन हो जाते हैं अतः यह दुःखदायी अहंकार तभी मिट सकता है जब अपने सच्चे स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो।

* * * *

लोग कहते हैं कि क्या अपने को ब्रह्म मानना घमण्ड नहीं है ? नहीं। अपने को ब्रह्म जानना घमण्ड तब हो सकता है जब दूसरों को तुच्छ समझे—दूसरों को ब्रह्म न समझे—दूसरों को नीच माने। पर जहाँ एकता वहाँ घमण्ड कैसा ? ब्रह्मज्ञानी जिस अवस्था में अपने को ब्रह्म मानता है उस अवस्था में वह दूसरों को भी वही समझता है। जिस तरह "अहं ब्रह्मास्मि" कहता है उसी तरह 'तत्वमसि' भी कहता है। "हम ब्रह्म हैं तुम ब्रह्म हो, और सारा संसार ब्रह्म है"—इस ब्रह्मज्ञान में घमण्ड कहाँ ? घमण्ड तो द्वैत में होता है।

* * * *

चेतन के अहंकार का लोप कभी नहीं हो सकता। पर लोग कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान होने पर अहंकार नहीं रह जाता, ब्रह्मज्ञानी

वही है जिसका अहंकार मिट गया हो इसका कारण यह है कि, "अहंकार की स्थूलता वहीं है जहाँ 'त्वम्' भी है। जहाँ तुम नहीं वहाँ हमको वैसा स्थूल भाव नहीं आता। अहम् का झगड़ा वहीं उठता है जहाँ त्वम् छेड़ छाड़ करने के लिए तैयार रहता है। बिना त्वम् के अहम् का स्थूल आकार मिट जाता है। इसी से कहा है कि ब्रह्मज्ञानियों का अहंकार मिट जाता है। क्योंकि ब्रह्मज्ञान में द्वैत नहीं है, एकता है। ब्रह्मज्ञानी के लिये "त्वम् कोई चीज ही नहीं, उसके लिये सारा संसार ब्रह्म है। अर्थात् संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो उसके स्वरूप से पृथक हो। ऐसी अवस्था में यह स्थूल अहंकार मिट जाता है। पर आत्मा चेतन है, इससे इसका वह अनिर्वचनीय अहंकार जिसमें "अहंब्रह्मास्मि" का ज्ञान होता है वह कभी नहीं मिटता।

चाहे हम हजारों पाप करें पर अपने को पापी नहीं मानते। चोर भी चोर कहने से रुष्ट हो जाते हैं। चाहे हम पापावतार भी हों पर जब हमें लोग धर्मावतार कहते हैं तो हम प्रसन्न हो जाते हैं। संसार में कोई अपने को पापी नहीं कहता, अपना अपराध अपने से स्वीकार नहीं करता। यदि किसी अपराधी ने अपना अपराध स्वीकार भी किया, तब भी वह घूम फिर कर यह सिद्ध करना चाहता है कि हमने यह इस कारण से किया। अर्थात यदि हमने उसे मार डाला तो इसलिये कि वह भी हमारे प्राण का भूखा था। जब कोई निस्तार नहीं देखते हैं तभी अपराधी अपना अपराध स्वीकार करते हैं। वह भी इसी आशा पर कि इससे ही शायद न्यायाधीश हमें अच्छा समझे। इन सब बातों के होनेपर भी हृदय से कोई अपना अपराध स्वीकार नहीं करता यह क्यों? पापी होनेपर भी लोग अपने को निष्पाप क्यों समझते हैं? इसका

कारण यह है कि वास्तव में जो "हम" हैं—जहाँ से यह "हम" उठता है—वह निष्पाप है—वह निर्विकार परमात्मा है पर भूल इस जगह है कि हम उस सच्चे "हम" को न पहचान कर केवल इस शरीर को ही निष्पाप कहने लगते हैं।

* * * *

पुराणों और शास्त्रों में संतोष की बड़ी महिमा लिखी है। पतंजलि ऋषिने अपने योग दर्शन में कहा है कि "संतोषादनुत्तं-सुखलाभः" अर्थात संतोष से अनुत्तम सुख की प्राप्ति होती है। उपदेशक, कथा कहनेवाले, पण्डितजी, मौलवी, फकीर और पादरी सभी संतोष की महिमा गाते हैं पर संतोष वास्तव में कोई नहीं करता। उपदेशक, मौलवी, फकीर और पादरी किसी में संतोष नहीं देखा गया। उपदेश देना और बात है पर "संतोष" जिसे कहते हैं वह कभी किसी में नहीं हो सकता। लोग कहते हैं कि अमुक साधु परमार्थी है—उसमें संतोष है, कभी नहीं। अर्थी मानी मतलबी है तो परमार्थी माने बड़ा मतलबी है परम माने बहुत बड़ा और अर्थी माने मतलबी। अतः विचार दृष्टि से देखो जो परमार्थी है वह अपनी बहुत बड़ी तृष्णा में लगा है। खूब विचारने से विदित होगा कि वास्तव में किसी को संतोष नहीं है—इसका क्या कारण? क्यों लोगों को संतोष नहीं होता? बात यह है कि जो कभी सम्राट् था—जिसका खर्च कभी बहुत बढ़ा चढ़ा था जिसके अधीन करोड़ों ब्रह्माण्ड थे। इस दशा में हमें संतोष कैसे हो सकता है? हृदय में सच्चा संतोष और सच्ची शान्ति उस समय आवेगी जब हम उसी अपने पूर्व पद को प्राप्त करलेंगे। उस स्वरूप को पहचानो जिसे पहचान कर मनुष्य सच्चा संतोषी बन सकता है। वह ऐसा पद है कि वहाँ पहुँचने पर आप से आप ये सांसारिक विषय तुच्छ मालूम

होंगे। मनुष्य कहता है कि हमारी अमुक नौकरी लग जायगी अमुक बात हो जायगी इतना मासिक वेतन हो जायगा तो हमें सन्तोष हो जायगा। यह व्यर्थ है। संतोष या शान्ति तब मिलेगी जब बाहरी अहंकार छूट जायगा और अपने सच्चे स्वरूप की प्राप्ति होगी।

वशीकरण-मन्त्र।

तुम कहते हो कि वशीकरण-मन्त्र का आजकल पता नहीं चलता, उसे कोई नहीं जानता। यह बात नहीं है। वशीकरण का मंत्र अब भी संसार में वर्त्तमान है-केवल तुम उसके सच्चे गुरु को नहीं जानते उसको भूले हुए हो। वशीकरण का सच्चा गुरु वही है जो सारे संसार को वश में किये है। सूर्य्य, चन्द्रमा, तारे तथा अनेक ग्रहोपग्रह उसके वश में होकर नाच रहे हैं। इतने बड़े संसार में एक अणु भी नहीं है जो उसके वश में न हो। उसको यद्यपि किसी ने इन आंखों से नहीं देखा तथापि उसके मानने वालों में से हजारों में एक ही होंगे जो उसके अस्तित्त्व को सिद्ध कर सकें। तथापि उसमें वश करने की इतनी शक्ति है कि सारा संसार बिना उसे प्रत्यक्ष किये ही उसका सेवक हो रहा है। उसी परम गुरु का नाम ईश्वर, ब्रह्म या परमेश्वर है। यदि तुम वशीकरण चाहते हो तो उसी की शरणमें आ जाओ। उसके जितने अवतार हुए हैं सबमें मोहनी शक्ति थी, सबको वशीकरण का ज्ञान था। वह सबसे बढ़कर तान्त्रिक है। भगवान् रामचन्द्र ने अपने वशीकरण मंत्र से बन्दरों को भी वश में कर लिया था। कृष्णचन्द्र का वशीकरण भी संसार में प्रसिद्ध है। उसका वशीकरण-मंत्र और कुछ नहीं, उसके स्वरूप

में ही वश करने की शक्ति है। वह स्वयम् ऐसा है-उसकी आत्मा ही ऐसी है-जिससे वशीकरण स्वयम् उसके वश में हो सकता है। यही कारण है कि जिसने अपनी आत्मा को उससे मिला दिया है वह भी वैसा ही हो गया। व्यास, बुद्ध, शंकराचार्य्य और ईसामसीह आदि, किसी पर वशीकरण का प्रयोग नहीं करते थे, केवल उन्हों ने अपनी आत्मा को उससे मिला दिया था। बस यदि तुम वशीकरण की खोज में होतो सब कुछ छोड़ दो। वह मंत्र यही है कि अपनी आत्मा को उस जगदीश्वर में मिला दो उसमें मिल जाओ। तुम ख़याल करो कि हम उससे अभिन्न हैं। जोसारे संसार को बश में किये है "हम उससे अभिन्न क्या"—वास्तविक बात तो यह है कि हम वही हैं। हममें और उसमें त्रिकाल में भी किसी प्रकार भी भिन्नता नहीं हो सकती। ईश्वर की अभिन्नता का ज्ञान ही वशीकरण और शान्ति का मूलतत्त्व है।

स्वास्थ्य-रक्षा।

आजकल स्वास्थ-रक्षापर जितने अच्छे अच्छे लेख लिखे जाते हैं उनमें स्वाभाविक आहार विहार पर वा प्राकृतिक नियमों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अमुक खाद्य मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है, अमुक नहीं। पशु अपना प्राकृतिक वा स्वाभाविक भोजन करता है। जंगली पशु पक्षियों में कोई वैसा रोगी नहीं देखा जाता। उनमें हम लोगों की तरह न वैद्य हैं न डाक्टर। हाँ, जिन पशु पक्षियों को मनुष्यों ने पाल रक्खा है वे अवश्य रोगी देखे जाते हैं। कारण यह है, कि इन पशुओं के स्वाभाविक अहार विहार में भेद पड़ जाता है। इन बातों से यह स्पष्ट मालूम होता

है कि यदि मनुष्य भी पशुओं की तरह अपना स्वाभाविक भोजन करे और आहारविहार भी प्रकृति के नियमानुसार हो तो रोगी नहीं हो सकता। यह बात यद्यपि ठीक है, पर मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि उसका कल्याण केवल इसी नियम के अनुसार नहीं हो सकता। मनुष्य विचार स्वरूप है। अतः इसका आरोग्य, इसकी शान्ति और इसका स्वास्थ्य इसके उत्तम और उच्च विचारों पर निर्भर है जिस मनुष्य का जितना ही उच्च विचार होगा वह उतनाही नीरोग और स्वास्थ्य युक्त होगा। उच्च विचार आरोग्य और शान्ति का मूल है।

जिस प्राणी का जो स्वभाविक भोजन है उसे वह उसकी स्वभाविक अवस्था में खा सकता है स्वाभाविक भोजन का यही लक्षण है। शेर का स्वाभाविक भोजन मांस है। घर ले जाकर, पकाकर, नमक मिर्च लगाकर, नहीं खाता। मनुष्य पकाता है नमक मिर्च लगाता है, तब खाता है। क्यों? यह उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है। बैल का स्वाभाविक भोजन घास है। बैल हरी घास देखकर उसी समय उसकी स्वाभाविक स्थिति में उसे चर लेता है। मनुष्य भी कई एक प्रकार की घास का साग बनाकर खाता है, पर उसकी स्वाभाविक अवस्था में नहीं। पकाकर, नमक मिर्च डालकर खाता है। मनुष्य और बन्दर का स्वाभाविक भोजन फल है। मनुष्य अमरूत और आमके बाग में जाता है और उसे तोड़कर, उसकी स्वाभाविक अवस्था में खा जाता है। मनुष्य के अधिकतर स्वभाव घास और मांसखाने वाले पशुओं से नहीं मिलते, इसके स्वभाव फल भोजी बंदरों से मिलते हैं। अतः मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल है। फल भोजी मनुष्य बहुत नीरोग रह सकता है। पर जिस प्राणी का जीवन विचार पूर्ण है उसके लिये केवल

यही नियम कल्याण कारक नहीं हो सकता। मनुष्य को स्वास्थ्य रक्षा के लिए केवल उच्च विचार की आवश्यकता है जिसका वर्णन नीचे किया जायगा।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो उन्नति करता हुआ एक ऐसी अवस्था में पहुँचा है जहाँ वह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर रहा है। द्वैत सिद्धान्त में प्रकृति अलग और पुरुष अलग है। प्रकृति जड़ है पुरुष चेतन। विचार दृष्टि से देखने पर मालूम हुआ कि मनुष्य योनि में आकर यह प्राणी सांसारिक नियमों का उल्लंघन करता हुआ क्रमशः ईश्वर की ओर झुक रहा है। प्रकृति के नियमानुसार दुबले प्राणी सबल प्राणियों के आहार हैं संसार में सर्वत्र दुर्बल प्राणी बलवानों द्वारा दबाए जाते हैं, संसार का यही प्रधान नियम है। पर उच्च विचार के मनुष्यों ने जो नियम, जो कानून, जो धर्मशास्त्र बनाये हैं उनमें इसका विरोध किया है। सारे संसार में कानून के अनुसार कोई बलवान दुर्बल के दुःख नहीं दे सकता। प्रकृति बलवानों की हितैषिणी है और ईश्वर दीनबन्धु है। ईश्वर के भक्त दीन रक्षक और प्रकृति के दीन भक्षक। संसार के जिस प्रदेश में जितना ही अज्ञान है, वहाँ के मनुष्यों में जितनी ही पशुता और सभ्यता है वहाँ उतना ही "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाला नियम चरितार्थ होता है। पर सभ्य मनुष्यों में यह बात नहीं है। वह क्रमशः दीनबन्धु की ओर जा रहा है। जो मनुष्य जितना ही उसके निकट पहुँच गया है वह उतना ही दयाशील हो गया है ऐसे दयावान मनुष्य महात्मा कहलाते हैं। इन नियमों पर ध्यान देने से मालूम होता है कि मनुष्य वह प्राणी है कि जो सर्वथा प्राकृतिक नियमों वा सांसारिक नियमों के अनुसार नहीं चल सकता न चलता है न चलने के

लिये इस योनि में आया है। मनुष्य योनि इस मर्त्तलोक की अन्तिम योनि है। जीवात्मा का प्रवेश इस योनि में इस लिये हुआ है कि वह इस योनि में आकर, अपने ज्ञान की उन्नति कर संसार का उलंघन कर, परमात्मा के पास पहुँच जाय वा उसमें मिल जाय। पर बहुत से लोग स्वास्थ्य रक्षा के बहाने मनुष्य को फिर बन्दर और पशु बनाना चाहते हैं। पर ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य योनि में आकर कोई प्राणी प्रकृति के नियमानुसार सर्वथा नहीं चल सकता। अतः स्वास्थ्य के पूर्वोक्त नियम उतने महत्व के नहीं हैं। मनुष्य को अपने उस बल को जागृत करना चाहिए जिससे प्रकृति स्वयम् उसकी परिचारिका वा दासी हो जाय। सांसारिक नियम उसकी इच्छा से उसके अनुसार हों—उसके गुलाम हों, न कि मनुष्य ही उसकेअनुसार चले वा उसका गुलाम बन जाय। विचार करो, तुम में वह शक्ति वर्त्तमान है जिसमें संसार के सारे प्राकृतिक नियम तुम्हारे गुलाम हो सकते हैं, तुम्हें उनके अनुसार चलने की उतनी आवश्यकता नहीं। संसार में परमात्मा से बढ़कर नीरोग और निर्विकार वस्तु कोई नहीं है। बस, उसका ध्यान करो—अपनी आत्मा को उसी में जोड़ दो—उसी में मिला दो तुम भी नीरोग हो जाओगे। "मिला दो—" यह शब्द भी निम्न कक्षा के मनुष्यों को समझाने के लिये है। वस्तव में तुम वही हो। तुम स्वयम् नीरोग, निर्विकार और निरामय परमात्मा हो, केवल उस अज्ञान को हटा दो जिससे तुम अपने को उससे अलग समझते हो, नीरोग और स्वास्थ्ययुक्त होने का यह सर्वोत्तम मार्ग है।

अमर होने का उपाय।

वेदान्त का सिद्धान्त है कि यह सारा संसार, विचार, खयाल और कल्पना मात्र है। और यही रूप आत्मा का भी है। आत्मा भी विचार स्वरूप है। मतलब यह है कि आत्मा और संसार में कुछ भेद नहीं है।

आत्मा चेतन है। सारा संसार भी चेतन है। जड़ तो भ्रम से विदित होता है। जितना हम लोग विचारते जाते हैं, यह बात प्रत्यक्ष होती जाती है कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म—" यह सिद्धान्त सर्वथा सत्य है। सारा संसार ब्रह्म है। इसका अर्थ यह है कि सारा संसार आत्मा है, चेतन है। चेतन विचार मात्र है अत संसार की सारी बातें विचार मात्र हैं। जब सारा संसार विचार मात्र है तो जिसका यह विश्वास है, यह विचार है—कि यह शरीर नहीं छूटेगा—यह शरीर नहीं मरेगा—वह कैसे मर सकता है? बिना हमारे विचार के बिना हमारी इच्छा के—हमारा शरीर नहीं छूट सकता। हमारा अमर होना या मरना हमारे अधिकार में है। यदि तुम्हारा दृढ़ विश्वास है कि हम नहीं मरेंगे तो तुम नहीं मर सकते। तुलसीदास जी ने भी कहा है "भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।" शंकर—अर्थात् परमात्मा क्या हैं विश्वास है तुलसीदास जी का मत है, ईश्वर और विश्वास दोनों दो नहीं-एक ही है। ईश्वर विश्वास-स्वरूप ही है। सारी बातों का तात्पर्य यह है कि विश्वास ही ईश्वर है और ईश्वर अमर है। ईश्वर की इच्छा को कोई रोक नहीं सकता। बस यह बात सिद्ध है कि जिसका विश्वास है कि हम नहीं मरेंगे उसे कभी मौत नहीं मार सकती।

सब को मरते देख, और सुन कर तुम्हें यह विश्वास हो गया है कि मनुष्य को मरना आवश्यक है। यही विश्वास काल है। इसका नाम मृत्यु है। यही मनुष्यों को मारती है पर मृत्यु ब्रह्म से भी प्रबल नहीं है। मृत्यु कोई वस्तु नहीं। मृत्यु जिसके निकट आती है वह भी कमजोर हो जाता है—बेकाम हो जाता है-फिर साक्षात् मृत्यु में क्या है? वह तो और भी कमजोर है। क्या मृतक में कुछ शक्ति हो सकती है? कभी नहीं। मृत्यु स्वयम् मृतक है, उसमें कुछ नहीं है। जहाँ सब प्रकार की शक्तियों का अभाव है उसी का नाम मृत्यु है। ऐसी मृत्यु जीवित और शक्ति-मान मनुष्य पर विजय कैसे प्राप्त कर सकती है? मनुष्य कितना ही निर्बल हो पर मृत्यु से बलवान् है। और मनुष्य में निर्बलता कैसी? मनुष्य तो आत्मा है और आत्मा ब्रह्म है। ब्रह्म सर्व शक्तिमान् है। फिर आत्मा और मनुष्य शक्ति हीन कैसे हो सकता है? मनुष्य मरता है तो अपने विश्वास से-अपनी इच्छा से—नहीं तो मौत क्या वस्तु है कि उसे मार सके। बिना तुम्हारी इच्छा के मौत तुम्हारे पास नहीं आ सकती।

* * * *

अच्छा, अभी सारे विश्व की बात जाने दीजिये। पर इस सारे शरीर पर तो अपनी इच्छा का ही राज्य है। हाथ के भीतर कोई दूसरा हाथ नहीं है, जो हाथ को फैलाता, सिकोड़ता उठाता और गिराता है। इसका कारण हमारी इच्छा है। जब हमने इच्छा की कि हाथ सिकुड़ गया, जब इच्छा की तो फैल गया। इच्छा करते देर नहीं कि हाथ गिर गया फिर ज्यों ही इच्छा की उठने लगा। इस तौर से सारे अंग आप की इच्छा के अधीन हैं। जब प्रत्येक अंग आप की इच्छा के अधीन है

तो उसके छोटे २ हिस्से आपही के अधीन हैं—यह सिद्ध है—हाथ वश में है अँगुलियाँ अधीनता में हैं। इसी तरह विचार करके देखिये तो आपके शरीर के एक एक परमाणु आप के अधीन हैं—आपकी इच्छा के अनुसार नाच रहे हैं। अच्छा, तो जब कि शरीर के सारे परमाणु पर आपका अधिकार है तो यह शरीर आप की बिना इच्छा के नष्ट कैसे हो सकता है ? जब यह आपकी इच्छा से उठता बैठता, दौड़ता और चलता है, तो फिर बिना आपकी इच्छा के वह निश्चेष्ट कैसे हो सकता है ? और बिना निश्चेष्ट हुए--बिना जड़ हुए--इस शरीर को मरा हुआ कौन कह सकता है ? अतः अपने शरीर पर अपनी इच्छा और विश्वास का राज्य देखकर हम कह सकते हैं कि इच्छा और विश्वास के सुधार से सारे रोगों और मृत्यु को जीत लेना कोई कठिन कार्य्य नहीं है। विश्वास रक्खो कि मृत्यु और रोग तुम्हारा कुछ नहींकर सकता। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे शरीर के भीतर किसी का नहीं चल सकता।

* * * *

किसी न किसी समय कोई न कोई रोग हो जाता है विचारिये तो उसका कारण कोई न कोई शङ्काही निकलेगी--कोई न कोई अपनी भावना ही निकलेगी। यह एक बड़ा गूढ़ तत्व है। बिचारने से स्पष्ट मालूम होगा कि बिना अपनी इच्छा के कोई नहीं मरता। एक मनुष्य मृत्युशय्या पर पड़ा है--मरने के निकट है—पर उसका प्रिय पुत्र चारसौ कोस पर बाहर है। वह कहता है कि "बिना पुत्र के देखे हमारा प्राण नहीं निकलेगा, उसे तार देकर बुला लो। मरते समय तो उसका मुख देख लें। पुत्र जब तक नहीं पहुँचना उसका प्राण नहीं निकलता है तार दिया गया, पुत्र पहुँच

गया, पिता ने पुत्र को देखा और मर गया। ऐसी घटनाएँ बराबर घटती हैं। बहुत से लोग बीसों बार इस प्रकार की घटना अपनी आँखों देख चुके हैं। इससे क्या मालूम होता है? इससे मालूम होता है कि जब तक उसकी इच्छा नहीं थी तब तक नहीं मरा। बिना पुत्र के देखे वह मरना नहीं चाहता था इसलिये वह तब तक नहीं मरा जब तक उसने पुत्र को नहीं देखा। देखने पर मर गया। क्योंकि पुत्र-दर्शन के बाद उसके भीतर जीने की कोई प्रबल इच्छा नहीं रही। जीने की कोई प्रबल इच्छा न रहने से थोड़ी सी तकलीफ के बाद मनुष्य मरने की इच्छा कर लेता है। पर यहाँ इन विषयों को बिस्तार से नहीं लिखा जा सकता।

* * * *

खूब विचार करने से मालूम हो जायगा कि कोई बिना अपनी इच्छा के नहीं मरता। चेतन में बड़ा जोर है इस की मौत कुछ नहीं कर सकती। कभी चेतन मनुष्य मरते नहीं देखा गया। मरने के पहले सब लोग बेहोश, संज्ञा हीन या अचेतन हो जाते हैं तब मरते हैं। बेहोश होने पर मृत्यु का बस चलता है। बेहोशी और रोग भी किसी न किसी अपनी इच्छा से ही होता है। यह प्रसिद्ध है कि योगी और ब्रह्मज्ञानी बिना अपनी इच्छा के नहीं मरते, मृत्यु उनके अधीन हो जाती है। कागभुशुण्डि, लोमस, नारद अश्वत्थामा गोरख और भर्तृहरि आदि कितने योगी अमर हैं। हजारों की संख्या में अब भी मृत्यु को जीतने वाले योगी हिमालय पर बिचर रहे हैं। यदि इन लोगों ने मृत्यु को जीता है तो इसका कोई नियम अवश्य होगा—इसकी कोई एक नीति अवश्य होगी। लोग कहते हैं वह नीति—वह नियम गुप्त हैं। गुप्त इसी लिए है कि वह तुम्हारी समझ में नहीं आती नहीं तो

संसार के सारे नियम प्रत्यक्ष हैं। तुम ब्रह्मज्ञान तो समझ गये, यह समझ गये कि हम ब्रह्म हैं पर यह नहीं समझे कि ब्रह्म को मृत्यु कैसे मार सकती है? तुम्हारी इच्छा ब्रह्म की इच्छा है। संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो ब्रह्म की इच्छा को टाल सके? क्योंकि सारा संसार उसकी इच्छा ही का दूसरा रूप है। यह संसार और कुछ नहीं केवल उसकी इच्छा ही मूर्तिमती हो रही है। बस जब कि सब उसकी इच्छा ही है तो उसकी इच्छा का विरोध करने वाला कौन है? यही नियम है—यही ज्ञान है--जिससे मौत हमारी इच्छा के अधीन में हो जाती है। यह लेख उन लोगों के लिए है जो वेदान्त शास्त्र को पढ़ चुके हैं--जो यह समझ चुके हैं कि हमी ब्रह्म हैं। ब्रह्म को मृत्यु कैसी?

* * * *

धन प्राप्ति का उपाय।

तुम्हें धन की चिन्ता है। इस चिन्ता में व्यग्र रहते हो। पर इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता। व्यग्र होने से—अधीर होने से—बुद्धि और बल दोनों मारे जाते हैं, इसी तरह शान्ति में ये दोनों बढ़ते हैं। जिसके पास बुद्धि और बल दोनों नहीं, उसके पास लक्ष्मी नहीं आ सकती। बुद्धिहीन और बलहीन को दरिद्रता ही विशेष पसन्द करती है। पर इस जगह पर पिता की कमाई से जो धनी हैं उनका वर्णन नहीं है। जैसे बुद्धि और बल बढ़ाने के लिए चिन्तारहित और शान्तियुक्त होने की आवश्यकता है, उसी तरह धनी भी वही हो सकता है जो शान्तियुक्त है। शान्ति ही सम्पत्ति की कुंजी है। यदि तुम धनी होना चाहते हो

तो व्यग्रता छोड़ दो उस परमात्मा का ध्यान करो, जिसका लक्ष्मी पैर दबाती और सेवा करती है। उसका ध्यान करना अपने स्व-रूप का ध्यान करना है। तुम स्वयम् लक्ष्मीपति हो। भावना करो कि हम विष्णु हैं और लक्ष्मी हाथ जोड़े हमारी सेवा करने के लिये तैयार है। तुम अपने स्वरूप का ध्यान करो—इस तुच्छ "अहम्" को उस लक्ष्मीपति परमात्मा के साथ जोड़ दो, धन आप से आप तुम्हारे चरणों की सेवा करेगा। ईश्वर दरिद्र नहीं है, वह लक्ष्मी पति है। लक्ष्मीपति का ध्यान कर कोई दरिद्र नहीं रह सकता। हम दीन हैं—दरिद्र हैं यह भावना ही दरिद्रता का कारण हो रही है। इसे छोड़ कर आज से यह भावना करो कि हम लक्ष्मीपति हैं—हम वह हैं जिसकी आज्ञा पालन करने के लिए सर्वदा लक्ष्मी खड़ी रहती है।

* * * *

उच्च भावना द्वारा आरोग्यता लाभ।

कई एक विद्वानों का कथन है कि पशुओं को अपना भोजन पचाने के लिए न औषधि खाने की आवश्यकता पड़ती है न कस-रत करने की। प्रकृति ने स्वयम् ऐसा प्रबंध किया है कि प्रत्येक प्राणी को भोजनोपार्जन में इतना परिश्रम करना पड़ता है जो भोजन पचाने के लिए पर्य्याप्त है। मनुष्य भी यदि अपने भोजन का उपाय अपने हाथ से करे तो उसे भी उसके पचाने के लिये कसरत या औषधि खाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जैसे भो-जन के लिए आप स्वयम् खेती करें, गेहूँ खेत से काटें, पीसें, अपने हाथ से पानी भर लावें। इस तरह से अपना सब काम अपने हाथ से करने पर मनुष्य को भोजन पचाने के लिए औषधि या कसरत की आवश्यकता न पड़ेगी। कसरत भी प्राकृतिक नहीं

है। कोई पशु कसरत नहीं करता। कसरत मनुष्यों ने अपनी बुद्धि से निकाली है। पशुओं को आप से आप अपना भोजन ढूंढ़ने में इतना परिश्रम पड़ जाता है कि कसरत करने की आवश्यकता नहीं रहती। पर मनुष्य ऐसा नहीं करते इसी से रोगी देखे जाते हैं। यह बात भी ठीक है कि मिहनत करना आवश्यक है पर यह मत सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है। मनुष्य पशु नहीं हो सकता। मनुष्य योनि केवल खाने और मेहनत करने के लिये ही नहीं है। मनुष्य योनि ज्ञानोपार्जन द्वारा आत्मिक उन्नति के लिये है। और आध्यात्मिक जीवन में शरीर से उतना काम नहीं लिया जा सकता। मनुष्य को चाहिये कि अपनी आत्मा को उस परमात्मा में जोड़ दे जो सारे संसार को अपने में लीन करके पचा लेता है। योगिराज शंकर जी ने इसी अपने स्वरूप के ध्यान से वा चिन्तन से काल कूट ऐसे विष को भी पचा लिया था। तुम सर्वदा यही सोचते रहते हो कि हमारी पाचनशक्ति दुर्बल है; हमारा पेट नीरोग नहीं है इसी भावना ने तुम्हारी पाचनशक्ति को दुर्बल बना दिया है। भावना का प्रभाव कितना पड़ता है—भावना के प्रभाव से कितने लोग रोगी हो जाते हैं—इसका अनुभव सभी पढ़े लिखों को है। तुम भावना करो कि हमारे पेट में हमारे भीतर उस आत्मा का निवास है जो कालकूट विष को भी पचा सकता है। "भीतर निवास है" यह भी निम्न कक्षा की भावना है। तुम स्वयम् वही हो जिसमें सारा संसार लीन होकर पच जाता है।

* * * *

यदि तुम्हारे पेट में बीमारी है तो ब्रह्मज्ञान का उपार्जन करो, बीमारी अच्छी हो जायगी। नित्य उठ कर भावना करो कि हमारे पेट में वही शक्ति है जो अगस्त्य ऋषि, भीम, कुम्भकरण और

महादेवजी के पेट में थी। भावना करो कि हमारा पेट दुर्बल नहीं है—हम महादेव हैं—तुम भी नीरोग हो जाओगे। मनुष्य केवल औषधियों या प्राकृतिक नियमों का पालन कर नीरोग नहीं हो सकता। पशुओं में चिन्तन, मनन भावना और विचार की शक्ति इतनी कम होती है कि वह नहीं के बराबर है। पर मनुष्य, शरीर से कहीं अधिक, बुद्धि और विचार से काम लेता है। मनुष्य के शरीर पर प्रकृति के नियमों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसके चिन्तन, मनन, विचार, बुद्धि और भावना का पड़ता है। मनन करने ही के कारण इसका नाम मनुष्य पड़ा है। मनुष्य वही है जैसा उसका विचार और सिद्धान्त है। अतः नीरोग होने के लिए भावना और विचार की उच्चता आवश्यक है। "हम जीवात्मा हैं, शक्तिहीन हैं, रोगी हैं"—यह नीच भावना है। इसे त्याग दो। इससे कुछ लाभ नहीं है। आज ही से भावना करो कि हम वह हैं जो नीरोग और निर्विकार है, हमें कोई रोग नहीं हो सकता। इसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ेगा वह भी साधारण नहीं। इसका प्रभाव ऐसा पड़ेगा कि आप स्वयम् अपने शरीर की दशा देखकर चकित होंगे। ब्रह्म की भावना शान्ति और आरोग्य का कोश है।

* * * *

महामारी के फैलने पर कितने लोग डर कर उसकी भावना कर उसे अपने पास बुला लेते हैं। यदि तुम स्मरण करो तो मालूम होगा कि तुम्हें भी कितने रोग भावना के कारण हो गये हैं। जिस औषधि वा वैद्य पर विश्वास नहीं है उसकी दवा से तुम कभी अच्छे नहीं होते। जिस औषधि या वैद्य पर विश्वास है उसकी दवा से अच्छे हो जाते हो। इसका क्या कारण? इसका कारण

यह है कि ऐसी औषधि के खाने पर तुम यह भावना करते हो कि अब हम अच्छे हो जायँगे। बस अच्छे हो जाते हो हमने केवल पानी देकर सैकड़ों रोगियों को अच्छा कर दिया है। बात यह है कि उस पानी को उस वास्तविक हम (परमात्मा) ने दिया था जिसके छू देने मात्र से जल अमृत हो जाता है। होमियोपैथिक औषधियाँ क्या हैं? एक सरसो बराबर गोली एक बोतल पानी में डाल देते हैं। फिर उसका एक बूँद लेकर एक बोतल जल में मिलाकर रोगी को पीने के लिए देते हैं। रोगी क्यों अच्छा हो जाता है? दवा की भावना से। इन सब औषधियों में केवल रोगी ही की भावना नहीं काम करती वैद्य की भावना भी काम करती है। जिस औषधि को देते समय वैद्यकी दृढ़ भावना है कि इससे रोगी अच्छा हो जायगा उसे खाकर रोगी अवश्य अच्छा हो जायगा। होमियोपैथिक, जल चिकित्सा, भस्म और लौंग इत्यादि देकर वा झाड़ फूँक कर रोगियों के अच्छा करने में अपनी भावना भी, बहुत काम करती है। महात्मा यदि अपने दृढ़ भावना से किसी रोगी को छू दे तो वह नीरोग हो सकता है। अतः यह सिद्ध होता है कि मनुष्य योनिमें भावना की प्रधानता है। बिना भावना के उच्च हुए मनुष्य सर्वथा नीरोग नहीं हो सकता।

* * * *

मनुष्य के लिये सब से बड़ा रोग अपने स्वरूप का अज्ञान है। जहाँ अपने स्वरूप का अज्ञान नहीं वहाँ रोग का ठहरना कठिन है। जिसे ब्रह्मज्ञान नहीं है वह कभी नीरोग नहीं कहला सकता। विचार करने से मालूम होगा कि मानसिक वा आध्यात्मिक उन्नति से सांसारिक रोग आप से आप मिट जाते हैं। खटाई के चिन्तन मात्र से शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है वह किसी

से छिपा नहीं है, अर्थात मुँह में पानी भर आता है एक युवा पुरुष पर युवती का चिन्तन मात्र भी बिना अपना प्रभाव डाले नहीं रहता। किसी भय के स्मरण होने से मनुष्य का शरीर लाल हो जाता और काँपने लगता है। इन सब बातों से मालूम होता है कि यदि हम किसी सच्चे निरामय, नीरोग और निर्विकार का नित्य चिन्तन करें—स्मरण करें तो अवश्य नीरोग हो जायगे। ऐसा आरोग्य का भंडार, नीरोग, निरामय और निर्विकार वह परमात्मा ही है दूसरा नहीं। अतः उस परमात्मा का स्मरण, उसका चिन्तन, उसकी भावना स्वास्थ्य रक्षा को सब से अच्छो दवा है। केवल चिन्तन ही से पूरा कार्य्य नहीं होगा किन्तु इस विश्वास के साथ चिन्तन करे कि वह नीरोग है अतः उसके चिन्तन से सारे रोग आप से आप नष्ट हो जायँगे।

* * * *

"हम उसका स्मरण कर रहे हैं"—यह भी निम्न कक्षा की भावना है। इससे भी पूरी शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शान्ति तब मिलेगी जब तुम उससे अभिन्न हो जाओगे। उस समय तुम्हारा "हम" कहना सांसारिक न होगा किन्तु उस हम का अर्थ परमात्मा ही होगा। इस विचार में तुम का प्रयोग भाषा की शैली बैठाने के लिये है। वास्तव में "तुम" कुछ नहीं, सब वही है। इस विचार में "हम" का प्रयोग इस शरीर से सम्बन्ध नहीं रखता यह भी उसकी ओर से है। यह शान्तिदायी विचार उस परमात्मा का उपदेश है जो शान्ति और आनन्द का समुद्र है।

आशा में सफलता।

निराश मत होना। जितना ही तुम निराश हो रहे हो उतनी ही निराशा तुमारे निकट होती जाती है। संसार के सभी पदार्थ

अपने सजातीय तथा अपने अपने समान पदार्थ को अपनी ओर खींचते हैं। अतः निराशा भी निराशा कोही खींचती है। निराश होना अपनी सफलता में बाधा डालना है। तुमारी सफलता तुमारे विचार के अधीन है। जो स्वयम् निराश हो रहा है उसकी सहायता प्रकृति भी नहीं कर सकती। यदि सफलता चाहते हो तो आशा रक्खो और दृढ़ आशा रक्खो। अपनी आशा पर कभी अविश्वास मत करो। अपनी आशा पर यदि स्वयम् तुम्हीं हँस रहे हो तो वह कहाँ तक पूरी हो सकती है। आशा, आशाही है, उसके पास निराशा नहीं जा सकती। पर ऐसा तब होगा जब आशा पवित्र और स्वच्छ हो। आशा के साथ निराशा को मिला कर लोग उसे अपवित्र और मलीन कर डालते हैं। वह मनुष्य धन्य है जिसकी आशा पवित्र, दृढ़ और स्वच्छ है। निराश हृदय को कभी शान्ति और सुख नहीं मिल सकता।

*　　*　　*　　*

आशा में बड़ी शक्ति है। आशा में स्वयम इतनी शक्ति है कि वह अपने को पूरी कर ले। पर आशा के साथ निराशा मिलकर उसे निर्जीव कर देती है। यदि आशा दृढ़ है तो सफलता उसके पास है। आशा सफलता का पूर्व रूप है। सफलता रूपी वृक्ष का आशा अंकुर **है**। जो बात होने को है-जिसकी तुम्हें आवश्यकता है उसी की आशा होती है। पर बीच में अविश्वास और निराशा मिलकर उसकी जड़ काट डालती हैं। जिस वस्तु को तुम चाहते हो उसके मिलने में सन्देह मत करो। जितना ही सन्देह करोगे उसके उसके मिलने में उतनी ही देरी होगी। विश्वास रक्खो वह वस्तु अवश्य मिलेगी। तुम यही कहते जाओ कि, वह मिलेगी, मिलेगी, मिलेगी।

मनोरथ पूर्ण करने की कुंजी।

हताश होकर आँसू मत बहाओ। सर्वदा प्रसन्न और प्रफुल्ल वदन रहो। आज यदि सफलता नहीं हुई तो कल्ह होगी, कल्ह नहीं हुई तो परसों होगी, चार रोज बाद होगी। देरी होने का कारण तुम्हारा अविश्वास है। तुमारे हृदय में जो थोड़ा सा अविश्वास है उसी से देरी होरही है। अतः देरी होने के कारण अविश्वास और निराशा को बढाते मत जाओ। देरी होनेके कारण ज्यों ज्यों अविश्वास और निराशा को बढ़ाते जाओगे त्योंत्योंसफलता तुमसे दूर होती जायगी। अनुत्तीर्ण होने पर वा एक बार असफल होने पर धैर्य्य को मत छोड़ो। यदि धैर्य्य को न छोड़ोगे तो तुम्हारी आशा आज नहीं तो कल्ह अवश्य फलवती होगी। इस बात को विचार कर समझ लो कि जिस वस्तु की आशा कर रहे हो, आशा स्वयम् उस वस्तु का एक सूक्ष्म रूप है। अतः आशा होने से वह वस्तु एक प्रकार से तुमारे पास आगयी है। किसी वस्तु की दृढ़ इच्छा उसकी प्राप्ति का पूर्व रूप है।

विपत्ति का बादल देखने में जैसा भयंकर मालूम होता है उतना भयंकर वह सचमुच नहीं होता। आने वाली विपत्ति बहुत बड़ी मालूम होती है। पर स्मरण रक्खो कि वहीं आते आते सोलह हिस्से में से एक हिस्सा भी नहीं रह जाती। विपत्ति दूर से बहुत बड़ी मालूम होती है। पर नजदीक आने पर बहुत छोटी हो जाती है। अज्ञानी इसके दूर के रूप को देखकर ही घबड़ा जाते हैं और उसके आने के पहले उसका अनुभव करने लगते हैं। इस तरह दूर की विपत्ति को आप से आप लोग नजदीक बुला लेते हैं। धैर्य्य धारण करो। सम्भव है कि आने वाली विपत्ति सौ हिस्से में से एक हिस्सा

भी न आवे। अतः पहले से ही घबड़ा जाना अच्छा नहीं है। घबड़ाने से बिपत्ति दूर करने का यत्न नहीं हो सकता। अतः नित्य इस बात की भावना करो कि हमारे ऊपर कोई विपत्ति नहीं आ सकती तुम अपने सच्चे स्वरूप का स्मरण करो तुमारे पास बिपत्ति नहीं आ सकती। सच्ची बात यह है कि विपत्ति और दुःखों की सृष्टिही नहीं हुई। करुणा वरुणालय, दीन बन्धु दयासागर सच्चिदानन्द निर्विकार ईश्वर दुःखों और विपत्तियों को नहीं बना सकता।

आत्मा एक ज्योति है जिसका धूम यह शरीर है। धूम के अणु बराबर नष्ट होते रहते हैं फिर भी उसका एक रूप तब तक खड़ा रहता है जब तक उसकी ज्योति जोती जागती और जगमगाती है। ठीक इसी तरह से इस परिवर्तन शील और परिणामी शरीर के अणु यद्यपि रोज रोज परिणाम, परिवर्त्तन और रूपान्तर को प्राप्त होते रहते हैं फिर भी यदि नित्य और अविनाशी आत्मा चाहे तो इस शरीर का यह रूप हजारों वर्ष तक खड़ा रहेगा। अतः आत्मा अपने स्थूल रूप शरीर को जब तक चाहे रख सकता है। देखो, आत्मा की इस शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर यह मनुष्य संसार के सब शोक और मोह से मुक्त हो आनन्दमय हो जाता है।

* * * *

आत्मा तैल और यह शरीर उसकी ज्योति या प्रकाश है। जब तक तैल है तब तक यह ज्योति भी जगमगाती रहेगी। आत्मा तैल अविनाशी है अतः उसकी ज्योति यह शरीर भी अविनाशी है। जैसे ज्योति के अणु बराबर नष्ट होते रहते हैं फिर भी ज्योति का एक रूप खड़ा रहता है उसी तरह परिणामी शरीर का स्थूल रूप भी जब तक मनुष्य चाहे बना रहेगा।

* * * *

दूसरों की ईर्षा से हृदय हर वक्त जलता रहता है। पित्त की अधिकता हो जाती है। खून में गर्मी की अधिकता रहती और शरीर शीघ्र रोगी या वृद्ध हो जाता है। अपनी सारी शक्ति दूसरों का कार्य्य बिगाड़ने में लग जाती है। अतः अपनी उन्नति रुक जाती है। यदि तुम्हें आनन्द और शान्ति के साथ रहना है, यदि तुम्हें अपने हृदय की शान्ति प्यारी है, यदि तुम्हें अपनी उन्नति और भलाई करनी है तो ईर्षा और द्वेष छोड़ दो।

* * * *

द्वेष मनुष्य के रक्त में वह विष उत्पन्न करता है जिससे मनुष्य शीघ्र रोगी निर्बल और वृद्ध हो जाता है। द्वेष हर वक्त हृदय को जलाता रहता है। हृदय में शान्ति नहीं रह जाती। खून हर वक्त अत्यधिक उष्ण रहता अतः शरीर में पित्त की अधिकता हो जाती है। दूसरों की भलाई के लिये ईर्षा, द्वेष और वैरभाव से मनुष्य को बचना चाहिये। बिना इसके हृदय शान्ति और आनन्द से पूर्ण नहीं हो सकता।

* * * *

निष्पाप मनुष्य।

जिस देश में हज़ारों वर्ष तक ब्रह्मज्ञान का प्रचार रहा उस भारतवर्ष के लोग कहते हैं, "पापोऽहंपापकर्माऽहम्"। पवित्र आत्मा को पापी और पापकर्मा कहना उस की हत्या करना है।

* * * *

मनुष्य के भीतर कौन पापी है। शरीर या उसकी आत्मा? शरीर तो आत्मा के वश में है। क्या लाठी किसी को स्वयम् मार

सकती है ? क्या लाठी पर आजतक कोई मुकदमा चला ? फिर क्या निराकार निर्लेप और निर्विकार आत्मा पापी है ? कभी नहीं। फिर पापी कौन है ? पापी वह है जो पाप को बनाता है और पाप के अस्तित्व में विश्वास रखता है।

* * * *

ज्ञान पाप को धो डालता है। जब हृदय से अज्ञान, अन्ध-विश्वास और भ्रम निकल जाता है तो उसी के साथ पाप भी निकल जाता है।

* * * *

लोग कहते हैं, ईश्वर हमारी प्रार्थना नहीं सुनता, हमारे ऊपर दया नहीं करता, और हमें सुखी नहीं बनाता। लोग व्यर्थ की आशा में मर रहे हैं। ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। सच्चे नियम और कानून का दूसरा नाम ईश्वर है। न्याय, नियम और क़ानून किसी की तरफदारी नहीं करता। यदि यह बात तत्व से समझ में आगयी तो हृदय को अपूर्व शान्ति मिलेगी।

* * * *

सब दुःखों का मूल अज्ञान है। संसार में दुःख तभी तक है जब तक अज्ञान है।

* * * *

मनुष्य विश्वासमय है। जब वह स्वयम् अपने को रोगी और पापी मानता है तो वह पापी और रोगी क्यों न रहे ?

* * * *

. योग क्या कोई बहुत कठिन चीज है ? कभी नहीं । ऐसेही व्यर्थ के विश्वासों और विचारों को हटाने तथा मनको अच्छे विचारों के साथ युक्त करने को योग कहते हैं ।

* * * *

मनुष्य उतनाही बड़ा होता जाता है जितनाही उसका ज्ञान और विचार बढता जाता है ।

* * * *

सच्चिदानन्द आत्मा सर्वव्यापक है । जब मनुष्य को इसका सच्चा ज्ञान और पक्का विश्वास हो जाता है तो मनुष्य स्वयम् आनन्दमय हो जाता है, क्योंकि जो सर्व व्यापक मानता है वह उसमें भी है ।

* * * *

मनुष्य को नीरोग बनाने वाले उसके विचार हैं; औषधि नहीं । जो आनन्द कंद ईश्वर को सर्व व्यापक मानता है वह रोगी कैसे हो सकता है ?

* * * *

रोगों का कारण वात, पित्त, और कफ नहीं है रोगों का कारण अज्ञान है । स्वास्थ्य यदि अच्छा नहीं है तो अज्ञान को दूर करो । यदि तुम्हारे हृदय में चिन्ता है तो इसका कारण अज्ञान है । अज्ञान को दूर करो सारी चिन्ता और सारे दुख आप से आप चले जायँगे । ज्ञान के भाई का नाम आनन्द बहिन को शान्ति कहते हैं । रोगों को यदि सचमुच दूर करना है तो हमारी बनाई हुई पुस्तक, "नीरोग' सुखी और जीवन मुक्त होने का अद्भुत उपाय" देखो ।

अपनी बुद्धि से काम लो

साढ़े निन्नानवे प्रतिशत मनुष्यों के विचार, विश्वास और भावनायें पुस्तकों, किस्सों कथाओं व्याख्यानों और नाटकों के अनुसार हुआ करती हैं। पुस्तक किस्से और व्याख्यानादि वही लोगों को अच्छे लगते हैं जो अधिकतर असत्य, अतिरञ्जित और असम्भव घटनाओं से पूर्ण होते है। जैसे, एक ने चाँद के दो टुकड़े कर चूर चूर कर दिया, एक वीर सूर्य को निगल गया अथवा एक फकीर ने एक छोटी सी मछली में दो हजार मनुष्यों को भोजन करा दिया और सब के पेट भर गये, लैला मजनू कैसे प्रेमी थे, शीरीं फरहाद कैसे थे और हातिम कैसा बहादुर था यह सुनने में अच्छा मालूम होता है पर मनुष्य इनसे सच्चे और वास्तविक ज्ञान से दूर जा पड़ता है। मनुष्य अपनी आँख की देखी हुई बातों पर कम ध्यान देता है-अपनी बीती और अपने अनुभवों का मूल्य नहीं समझता। पर, सच्ची बात यह है कि सच्चा और वास्तविक ज्ञान अपनी बुद्धि, अपना निष्पक्ष अनुभव और अपनी देखी हुई घटना ही, बतला सकती है। किताबी बातों और दूसरे के किस्सों की ओर ध्यान न देकर अपनी देखी हुई घटनाओं पर निष्पक्ष भाव से विचार करो इससे वास्तविक और सच्चा ज्ञान होगा। बिना सच्चा ज्ञान हृदय को शान्ति नहीं मिल सकती। सच्चा ज्ञान-सच्ची शान्ति और सच्चे सुख का स्रोत है

* * * *

भूतों के झूठे किस्से, झूठी कथायें और किसी पुरुष विशेष की झूठी प्रशंसा बहुत बढ़ा चढ़ा कर करने की इन मनुष्यों ने अपना

स्वभाव बना लिया है। इससे सत्य की हत्या होती, ज्ञान का खून होता है सच्चा अनुभव प्रकाश में नहीं आने पाता। अतः ज्ञान प्राप्त करने का सबसे अच्छा साधन अपनी बुद्धि, अपनी आँख, अपना निष्पक्ष अनुभव और अपनी आत्मा है। सच्चे ज्ञान और सच्चे आनन्द का समुद्र यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा है।

* * * *

अपनी बुद्धि से काम न लेकर, अपनी आँखों का विश्वास न कर, अपनी आत्मा को तुच्छ मानकर मनुष्य जाति ने आजतक बहुत धोखा खाया है। अपनी जीती जागती आत्मा को तुच्छ मानकर मनुष्य जाति मुर्दों के पीछे दौड़ती और उनसे सहायता पाने की आशा रखती है। दूसरों की आशा छोड़कर अपनी आत्मा पर विश्वास रक्खो। सफलता, सुख, शांति और आनन्द उसी के साथ रहते हैं जिसके साथ स्वावलम्बन, आत्म गौरव और आत्म विश्वास है।

भावना और इच्छा में बल है। इच्छा ईश्वरीय वस्तु है। जो चाहते हो उसे उपस्थित करने के लिये प्रकृतिको आज्ञा दो और इस विश्वास और आत्मबल के साथ आज्ञा दो कि वह इसे अवश्य पूरा करेगी। नियमानुसार प्रकृति तुम्हारी आज्ञा मानने के लिये विवश है। जैसे सूर्यका पूर्वकी ओर उदय होना नियत है उसी तरह से यह भी नियत है। आत्मा स्वामी और प्रकृति उसकी दासी है। जो मनुष्य अपने अज्ञान के कारण इसके विरुद्ध सोचता और भावना करता है उसके हृदय में कभी शान्ति नहीं आती। तुमारे भीतर उस सर्व शक्तिमान् आत्मा का निवास है जिसकी यह

प्रकृति दासी है । प्रकृति में यह शक्ति नहीं है कि वह तुमारी इच्छाओं के विरुद्ध चले । इस विषय को जिसने तत्व से समझ लिया है उसका हृदय सर्वदा शान्ति और आनन्द से पूर्ण रहता है।

* * * *

प्रकृति से अपनी परिस्थितियों और कामोंको सरल करने के लिये मत कहो। इसकी इच्छा मत करो कि तुमारे कर्तव्य कर्म सरल हो जायँ। इससे अच्छा तो यह है कि तुम शक्तिमान् होनेकी इच्छा करो । भावना करो कि हम ऐसे शक्तिमान् हो जायँ कि कठिन से कठिन काम भी कर सकें। आसान काम पानेकी भावना मत करो । बलकी इच्छा करो, सरल काम मिलने की इच्छा करना व्यर्थ है। कठिन से कठिन परिस्थितियों का भी सामना करने के लिये तैयार रहो इससे तुमारा शरीर बलवान होगा, आत्म बल बढ़ेगा और हृदय में शान्ति रहेगी।

* * * *

ईश्वर तुम स्वयम् हो। सर्व शक्तिमान् ईश्वर बाहर नहीं तुमारे भीतर ही वर्तमान् है बलवान् और विजयी होना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है । इसके लिये ईश्वर या प्रकृति से प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं। जिसकी आवश्यकता है उसके लिए दृढ़ता और विश्वास के साथ प्रकृति को आज्ञा दो प्रकृति उसे पूरा करेगी। यह याद रक्खो कि तुमारे भीतर जो आत्मा है वह सारे संसार का नियन्ता और शासक है। तुम्हें यदि सच्चे आनन्द और सच्ची शान्तिकी आवश्यकता है तो इसे पहचान लो।

* * * *

तुम क्या नहीं कर सकते पर तुम्हारे भीतर विश्वास नहीं है।

अविश्वास के कारण तुम डरते हो। अपने सच्चे स्वरूप को जान कर निर्भय हो जाओ। सारी आपत्ति सारी विपत्ति, सारी कठिनाई और सारा दुःख उसी दिन से छूट जाता है जिस दिन से यह मनुष्य निर्भय हो जाता है-जिस दिन से यह मनुष्य भयको अपने हृदय से निकाल देता है। भयको निकाल देने से असम्भव भी सम्भव हो जायगा।

शान्तिदायी विचार।

भूत काल की बातों के बताने में केवल चालाकी है। भविष्य की बातें ईश्वर भी नहीं बता सकता, क्योंकि अपना भविष्य बनाने और सुधारने के लिए मनुष्य स्वतन्त्र है। जब तक मनुष्य अपना भविष्य सुधारने में स्वतन्त्र न हो तब तक वह कर्मों का फल नहीं पा सकता। परतन्त्र जीव को यदि कर्मों का फल ईश्वर भी दे तो यह न्याय नहीं अन्याय है। अतः भविष्य नियत नहीं है। तुम्हारा भविष्य तुमारे हाथ में है। तुम इसे जैसा चाहो बना सकते हो। एक बार इस वास्तविक और सच्चे तत्व को हृदय से अनुभव करो और देखो हृदय को कैसी अपूर्व शान्ति मिलती है।

यदि किसी ज्योतिषी, ओझा, या भविष्य वक्ता ने यह कह दिया है कि तुम्हारे ऊपर भविष्य में अमुक अमुक प्रकार कष्ट और दुःख आ पड़ेंगे अथवा तुम इतने दिनों से अधिक संसार में नहीं रहोगे तो ऐसे लोगों से साफ कह दो कि तुम झूठे हो। ईश्वर ने किसी का भविष्य पहले से नियत नहीं कर रक्खा है। यदि सबका भविष्य पहले से ही नियत है और मनुष्य को वही यन्त्र की तरह करना पड़ेगा तो पाप पुण्य का भागी मनुष्य नहीं हो सकता। अतः भविष्य नियत नहीं है। मनुष्य का भविष्य मनुष्य के हाथ में है।

तुम अपने भविष्य को इच्छाशक्ति, मनोबल अच्छे विचारों, अच्छे ज्ञान और शुभ कर्मों से सुधार सकते, फेर सकते और बना सकते हो। तुम्हारा भाग्य तुमारे हाथ में है। बिना इस ज्ञान को तत्व से समझे हृदय में सच्ची शान्ति नहीं आ सकती।

भविष्यवक्ता से अपने अपने भविष्य की विपत्तियों को सुनकर हताश और दुःखी होना मूर्खता है। ईश्वर या आत्मा ने संसार का नियम अलबत्ता नियत कर दिया है, पर भविष्य किसी का नियत नहीं है। गड्ढे में पैर डालने वाला अवश्य गिरेगा, यह नियम है। पर गड्ढे की ओर जाते देखकर गिरने की भविष्यद्वाणी ठीक नहीं हो सकती। आँखें हैं, ज्ञान है और रास्ता बतलाने वाले गुरु संसार में वर्तमान हैं। अतः कौन कह सकता है कि आगे चलकर गड्ढा देखकर, या गुरु से सुनकर वह अपना रास्ता नहीं बदल देगा। और यदि वह रास्ता बदल देगा, गड्ढे में उसके पैर नहीं पड़ेंगे तो वह उसी ईश्वर या आत्मा के नियमानुसार नहीं गिरेगा। गड्ढे में पैर पड़ने पर गिरना एक नियम है पर गड्ढे की तरफ से मुड़ जाना मनुष्य के वश में है। आँखें मौजूद हैं ज्ञान वर्त्तमान है और गुरु का उपदेश हो रहा है। फिर हताश होने की क्या आवश्यकता। प्रसन्नता और विश्वास के साथ अपने ज्ञान और मनोबल से काम लो। सारी विपत्तियाँ और सारे दुःख दूर हो जायँगे और तुम एक पक्षी की तरह आनन्द से परिपूर्ण रहोगे।

ईश्वर दयालु है। वह ऐसा निर्दय नहीं है कि किसी मनुष्य के पैर में रस्सी लगाकर गड्ढे की ओर खींच लें और किसी भविष्यद्वक्ता के वचन को सत्य करने का यत्न करे। प्रकृति, ईश्वर और संसार के सारे नियम तुम्हें गड्ढे से बचाने के लिये हैं। गड्ढे में डालने के लिये नहीं। पर ईश्वर भी उसी की सहायता करता

है जो स्वयम् अपनी सहायता करने के लिये तैयार है। हमारा ईश्वर हमारी आत्मा से अभिन्न है। दोनों एक हैं। अपनी आत्मा का ही मजहबी नाम ईश्वर है। आत्मा स्वतन्त्र है। यह जब चाहे अपने भाग्य और भविष्य को फेरकर अपने अनुकूल बना ले। तुम स्वयम् अपने को तुच्छ और परतन्त्र समझ कर विपत्तियों से बचने का यत्न नहीं करते। तुम विपत्तियों और दुखों को देखकर घबड़ा जाते हो और घबड़ा कर स्वयम् अपने को विपत्ति में डाल लेते हो। वास्तविक तत्व को समझो, सच्चा ज्ञान ही सुख शान्ति और आनन्द का भण्डार है।

* * * *

जिस योगसाधन से मनुष्य की बुद्धि इतनी शुद्ध नहीं हुई कि वह आत्मज्ञान प्राप्त कर सके वह योगसाधन नहीं है। मनुष्य मनोमय होता है अतः यह मन जितना ऊँचा होगा उतना ही ऊँचा मनुष्य हो सकेगा। मन ऊँचा होता है आत्मज्ञान से और आत्मज्ञान होता है उस सच्चे योगसाधन से जिससे मनुष्य की बुद्धि शुद्ध और तीक्ष्ण होती है। बहुत से वृक्षासन (शीर्षासन) सन्ध्योपासन और सूर्य्यनमस्कार करने वाले जानते हैं कि यही योगसाधन है। पर यह उनका भ्रम है। योगसाधन में आसनों का अभ्यास भी आवश्यक है पर केवल आसनों का अभ्यास योगसाधन नहीं है। जबतक सच्चा योगसाधन न होगा। जबतक आत्मज्ञान न होगा। जबतक बुद्धि खूब शुद्ध न होगी तब तक सच्चा सुख, सच्चा आनन्द और सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती।

* * * *

मनुष्य की आत्मा के भीतर अनन्त शक्ति है, अनन्त और अखंड आनन्द है, अनन्त सुख और सच्ची शांति है, अनन्त और

सच्चा ज्ञान है। सब कुछ है, पर बहुत से लोग आत्मज्ञान न होने के कारण इससे अनभिज्ञ रहते हैं और सर्वशक्तिमान को अपने से अलग मानते हैं। जब तक हम सर्वशक्तिमान् ईश्वर को अपने से अलग मानकर उससे डरा करेंगे तबतक हृदय को सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती।

* * * *

घुटने टेक कर प्रार्थना करने वाले यह नहीं जानते कि वह अपनी आत्माको इस तरह से गुलाम बनाकर कितना नीचे गिरा रहे हैं। आत्मज्ञान से विमुख मनुष्य यह नहीं जानता कि वह सर्व शक्तिमान बाहर नहीं, भीतर है। वह भक्त यह भी नहीं जानता कि हम सेवक नहीं स्वामी हैं, हम गुलाम नहीं स्वतन्त्र हैं, हम बद्ध नहीं मुक्त हैं। मुक्ति और बन्धन अपने मन के भीतर है। जो अपने को किसी का गुलाम मानता है वह मुक्त कैसे है? जो सेवक है उसमें शान्ति कहाँ? जो बद्ध है वह स्वतन्त्र कैसे है जो ज्ञान भक्ति या धर्म हमारे सच्चिदानन्द को या हमारी स्वतन्त्र आत्मा को गुलाम, सेवक या नीच बनाना चाहता है उसे दूर से ही छोड़ दो। अपनी आत्माको पहचानो। अपनी महानता और अपने गौरव का ज्ञान स्वयम् प्राप्त करो। जबतक अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं है तबतक सच्चा आनन्द और सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। आत्मज्ञानी जीवनमुक्त है, वह संसार में रहता हुआ भी स्वर्ग में है। आत्मज्ञानी के लिए संसार दुःखका समुद्र नहीं आनन्द का महासागर है।

* * * *

अपने को निर्बल मानना सचमुच निर्बल होजाना है। अपने को सेवक और बद्ध मानना सचमुच अपने हाथों से अपनी स्वत-

न्त्रता छीनकर हथकड़ी और बेड़ी धारण कर लेना है। ईश्वर के सामने भी नित्य गिड़गिड़ाना, और हाथ जोड़ना और नाक रगड़ना मनुष्य को नीच बना देता है। सचमुच यदि ईश्वर का व्यक्तित्व हमारी आत्मा से अलग होता तो वह इतनी प्रार्थनाओं और माँगों से ऊब गया होता। अनन्तकाल बीत गये पर मागनेवाले अबतक दरिद्र ही रहे। अब भी वही माँगें और वही प्रार्थनायें वर्त्तमान हैं। बिना आत्मज्ञान के हृदय में पूर्णता नहीं आ सकती। जबतक हृदय के भीतर पूर्णता नहीं है, तबतक वहाँ आनन्द और शान्ति नहीं रह सकती।

* * * *

अन्ध विश्वास।

भय अज्ञान और अन्ध विश्वास अनेक प्रकार के भूतों की रचना करते हैं। बहुत से अज्ञानी इन भूतों को देवता भी कहते हैं और इन्हीं की पूजा भी करते हैं। अज्ञानियों के देवता वही हैं जो उन्हें डरा सकते हैं या जिनसे वह डरते हैं। दुःख पड़ने पर या दुःखों से बचने के लिये पूजा होती है इन अज्ञानियों के देवता सताते हैं, बदला लेते हैं, भय दिखलाते हैं, दोजख में डालते हैं और यदि इनकी पूजा न दो तो क्रोध भी कर बैठते हैं। ज्ञानियों और मुक्त लोगों के हृदय से ऐसे भूत, देवता और ईश्वर का भाव निकल जाता है। और जब अन्धविश्वास का परदा हृदय से हट जाता है तो अपनी आत्मा का सच्चा स्वरूप चमक उठता है। इस आत्मदेव के प्रकाश में शान्ति की हवा चलती और आनन्द की वृष्टि होती है।

* * * *

जो पूजा न पाने पर क्रोध करता और भय दिखलाता है, वह ईश्वर और देवता कैसे ? अज्ञान हृदय में भय, अन्ध विश्वास और झूठी कल्पना के भीतर ऐसे देवताओं, ऐसे ईश्वर और भूतों की सृष्टि होती है। जिसके हृदय में इस प्रकार के भय लगे हुए हैं वह मुक्त नहीं बद्ध है। हृदय में जब तक भय तबतक स्वतन्त्रता और मुक्ति कहाँ ? सच्ची स्वतन्त्रता और सच्ची मुक्ति के साथ ही सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द है।

* * * *

इस अन्धविश्वास से हानि अधिक और लाभ कम होता है। अतः अज्ञान को दूर कर, अन्धविश्वास को जलाकर, भय को हृदय से निकाल कर, अपने आत्मतत्त्व को पहचानो। बिना पहचाने भी जब यह अनेक देवी देवताओं के रूप में तुम्हारी सहायता करता है तो पहचानने पर और भी अधिक सहायता करेगा। अज्ञान वश अपनी आत्मा और अपने विश्वास को ही देवी देवता और भूतों के रूप में बदलकर लोग उससे डरते और कष्ट उठाते हैं। सच्चा ज्ञान बतलाता है कि यह सब अपनी आत्मा ही है। ऐसा ज्ञान होते ही सब भय छूट जाते, विपत्तियाँ टल जातीं और अपनी आत्मा सर्वदा लाभ पहुँचाने के लिए तैयार रहती हैं। अपनी आत्मा अपने को कष्ट नहीं दे सकती, कष्ट देता है अपना झूठा विश्वास। आत्मा तो गुणों का भण्डार, शक्तियों का खजाना और शान्ति तथा आनन्द का समुद्र है। योगियों को चाहिये कि इसे तत्त्व से पहचान कर इस शान्ति और आनन्द के समुद्र में निर्भय होकर स्नान करें।

* * * *

एक मौलवी ने स्वप्न देखा कि उनके सामने एक लम्बी दाढ़ी

वाला शैतान आया। उन्होंने उसकी दाढ़ी पकड़ कर जोर से एक थप्पड़ मारा। थप्पड़ लगते ही नींद टूट गयी देखा कि वह अपनी दाढ़ी पकड़े हुए हैं और थप्पड़ भी उन्हीं के मुंह पर है। बात यह है कि वह शैतान मौलवी से अलग नहीं था। स्वप्न में हमारी ही आत्मा एक से अनेक रूप धारण कर लेती है। आत्मा ही सड़क बनाती, आत्मा ही उसे खींचती और आत्मा ही उसपर सवार होती है। शैतान-भूत, देवी देवता और जड़-चेतन सारा संसार आत्मा की कल्पना है। जिसका जैसा ज्ञान है, जिसकी जहाँ तक पहुँच है, उसी के अनुसार वह अपने देवी-देवता और भूत-प्रेत की कल्पना कर लेता है। जैसे जैसे मनुष्य का ज्ञान उन्नति करता गया वैसे ही वैसे उसके देवी-देवता भी उन्नति करते गये। पहले जो भूतों का सेवक था वह उन्नति करके देवताओं का सेवक हो गया। सारा संसार है। वही एक से अनेक हो गया है। जड़ चेतन सब आत्मा निष्पाप, पवित्र और आनन्दमय है। अतः सारा संसार पवित्र, निष्पाप और आनन्दमय है। संसार दुःख का समुद्र नहीं आनन्द का महासागर है। इसे दुःख का समुद्र तुम्हारी अज्ञानता, अन्धविश्वास, भ्रम और डरनेवाले स्वभाव ने बना रक्खा है। किस बात की अज्ञानता? यही. इस बात की अज्ञानता कि यह संसार आत्ममय नहीं दुःखमय है, शान्तिमय नहीं कष्टमय है। रोग-दोष और भूत-प्रेत सब तुम्हारी कल्पना के फल हैं तुम स्वयम् अपनी झूठी कल्पना से भयभीत होते, और इस आनन्दमय संसार को दुःखमय बना लेते हो। छोड़ो इस भावना को, त्याग दो इन झूठी कल्पनाओं को अपने हृदय के सिंहासन पर सच्चिदानन्द स्वरूप अपनी आत्मा को बैठाकर शान्ति और ब्रह्मानन्द का अनुभव करो।

आत्मदेव।

आत्मा के भीतर अनन्त धन, अनन्त रूप और अनन्त बल है। पर, इस खज़ाने पर तुम्हारे अज्ञान और अविश्वास ने ताला चढ़ा रक्खा है। आत्मा की लक्ष्मी और आत्मा की शक्ति पर विश्वास करो और इसी विश्वास की कुंजी से अविश्वास के ताले को हटाकर इस आत्मा में से जो चाहे ले लो। यह चोरी या डाका नहीं है यह अपना ही खजाना है। भ्रमवश या अज्ञानवश अबतक तुमने इधर दृष्टि नहीं डाली है। चीज़ तुम्हारी है, खज़ाना तुम्हारा है, यह आत्मदेव स्वयम् तुम्हारे हैं। पुराने विश्वासों की ओर पीठ करके अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप की ओर मुड़ जाओ। अज्ञान और भ्रम की आग से झुलसे मनुष्य जबतक अपनी आत्मा की शीतलता के पास नहीं पहुँचेंगे तब तक शान्ति नहीं मिल सकती। हमारा सच्चा स्वरूप और हमारी सच्ची आत्मा शान्ति और आनन्द का समुद्र है। भ्रम और अज्ञान के जंगल में भटकना छोड़कर इसी समुद्र में स्नान करो।

—:※:—

समानाकर्षण शक्ति

जो जैसा होता है उसी को अपनी ओर खींचता है। जलराशि समुद्र भूमंडल की सब नदियों को अपनी ओर खींच लेता है। लड़कों के पास लड़के, वृद्धों के पास वृद्ध और लुटेरों के पास लुटेरे इकट्ठे हो जाते हैं। अतः सर्वदा प्रसन्न रहो, हँसते रहो और आनन्दमय रहो, इसका फल यह होगा कि चारों ओर से संसार का सारा आनन्द और सुख तुम्हारी ओर झुक पड़ेगा, खिंचा हुआ और बहता हुआ चला आवेगा।

जैसे को तैसा खींचता है। समान के पास समान जाता है। गँजेड़ी के पास गँजेड़ी, भँगेड़ी के पास भँगेड़ी और शराबी के पास गाँवभर के शराबी एकत्र हो जाते हैं। मनुष्य के चरित्र का पता उसकी मित्रमंडली से बहुत कुछ लग सकता है। अतएव यदि हमें ईश्वर को अपने पास और अपने हृदय में बुलाना है तो हमें स्वयम् ईश्वर बन जाना चाहिये।

* * * *

समानाकर्षण की नीति वा नियम जैसा कि ऊपर कहा गया है अचल, अटल और दृढ़ है। संसार में बुरे और भले, उलटे और सीधे, छोटे और बड़े, नीचे और ऊँचे, दासता और स्वतन्त्रता, निर्बल और बलवान सब प्रकार के भाव वा विचार भरे हुए हैं। अतः जैसे भावों और विचारों को अपनी ओर खींचना है उन्हीं का ध्यान करो और हो सके तो वही हो जाओ।

* * * *

मुक्ति का अर्थ यह नहीं है कि जीव ईश्वर में मिल जाता है या मनुष्यात्मा ईश्वरत्व के समुद्र में डूब मरती है। ऐसा हो तो कोई विचारवान इस मुक्ति को नहीं चाहेगा। मुक्ति की अवस्था में ज्ञान द्वारा ईश्वर ही जीव में मिल जाता है जीव ईश्वर में नहीं। जिसको साधारण मनुष्य बिन्दु कहते थे वही ज्ञान होने पर समुद्र साबित होता है। इस ज्ञान को समझो बस सुख की सारी सामग्री और आनन्द का समुद्र तुम्हारे भीतर मौजूद है और तुम सम्राटों के भी सम्राट् हो।

* * * *

समान को अपने समानवाली वस्तुओं को खींचने की अद्भुत शक्ति है। पक्षियों के पास पक्षी, भेड़ियों के पास भेड़िए और

हिरनों के पास हिरन आपसे आप जुट जाते हैं। अतः यदि ईश्वर को अपने हृदय में बुलाना है तो पहले हृदय में उन्हीं शुभ गुणोंको धारण करो जो ईश्वर में वर्त्तमान हैं। ईश्वर को खींचने के लिये तुम्हें स्वयम् ईश्वर बन जाना चाहिये।

* * * *

यदि तुम किसी से मिलने जाओ तो जबतक तुम घर के मालिक से बातें करोगे तुम्हारा सेवक उनके सेवकों से बातें करेगा और उन्हीं में मिल जायगा। समान गुणोंवाली वस्तु समान गुण वाले पदार्थ को अपनी ओर खींच लेती है। काश्तकार के पास काश्तकार, मजदूरों के पास मजदूरे, भक्तों, सेवकों और गुलामों के पास भक्त सेवक और गुलाम आप से आप इकट्ठे हो जायँगे। अतः इस नीति को समझो और इसपर खूब विचार करलो। ईश्वर सेवक नहीं स्वामी है, ईश्वर गुलाम नहीं मालिक है। इसलिए यदि तुम्हें ईश्वर को अपने निकट बुलाना है, यदि ईश्वर का दर्शन करना है, यदि अपने हृदय को ईश्वरमय करना है तो अपने हृदय से गुलामी के भावों को निकालकर उच्च भावों को स्थान दो।

जीव बिन्दु है और ईश्वर समुद्र है। यह तब हो सकता था जब कि ईश्वर अखण्ड, अनन्त, अनादि और पूर्ण न होता। समुद्र का भाग बिन्दुओं में हो सकता है पर ईश्वर का भाग या खण्ड नहीं हो सकता। पूर्ण का प्रत्येक भाग पूर्ण होता है। अखंड, अनंत और अनादि का प्रत्येक भाग अखंड अनन्त और अनादि है। या इसे यों मान लीजिये कि अखण्ड, अनन्त, और अनादि का खण्ड, अन्त और आदि नहीं होता। वह अखण्ड है और अनन्त है अतः एक परमाणु के बराबर भी विश्व भरमें कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ वह नहीं है। और जहाँ है वहाँ उसका

खण्ड नहीं है पूर्ण है। अतः सब पूर्ण हैं, सब ईश्वर हैं और सब अनन्त हैं। इस तत्व को समझो तो वह आनन्दकन्द परमात्मा अपने पास मिल जायगा।

* * * *

यदि ईश्वर अखण्ड, अनन्त, पूर्ण और सर्वव्यापक है तो दुःख, विपत्ति, कष्ट, रोग, दोप और पाप कहाँ है? जहाँ ईश्वरत्व है वहीं यह सब कैसे रह सकते हैं? ईश्वर कहाँ नहीं है? अतः भीतर बाहर चारो ओर आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है। हम स्वयम् आनन्दकन्द और सच्चिदानन्द हैं।

* * * *

रोग, दोप, पाप और दुःख का अस्तित्व केवल कल्पना के भीतर है। वास्तव में इनका अस्तित्व ईश्वरीय सृष्टि के अन्दर नहीं है। निष्पाप, निष्कलंक, निरामय और निर्विकार ईश्वर पाप, दोप, रोग और दुःखको नहीं बना सकता। ये काल्पनिक और असत्य हैं इन्हें अपने मन से निकाल दो। देखो! तुमारे चारो ओर ईश्वर ही ईश्वर और आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है।

* * * *

तुम पाप, दोप, रोग, दुःख और शैतान के राज में नहीं हो, तुम ईश्वर के राज में हो जिसके राज में पाप, दोष, रोग और दुख नहीं रह सकते। तुम्हारे ऊपर, नीचे, आगे, पीछे बाहर, भीतर ईश्वर ही ईश्वर भरा हुआ है। तुम स्वयम् ईश्वर हो और तुम स्वयम् आनन्दरूप हो।